सत्साहित्य-प्रकाशन

मेरा वकालती जीवन

अदालती मामलो के शिक्षाप्रद प्रसग

गणेश वासुदेव मावलंकर

●

१९६४

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

स्वर्गीय पिता

राव साहब वासुदेव केशव मावलंकर

की

स्नेह-सिंचित तथा श्रद्धास्पद स्मृति मे

प्रकाशकीय

हिन्दी के पाठक प्रस्तुत पुस्नक के लेखक से भलीभाति परिचित हैं। 'मडल' से उनकी दो पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। पहली है 'मानवता के झरने', जिसमे उन्होने बताया है कि अधिकाश व्यक्ति परिस्थितिवश अपराध करते है और यदि उनके साथ ठीक व्यवहार किया जाय तो उनमे सहज ही सुधार हो सकता है। दूसरी पुस्तक 'मेरे सस्मरण' गाधीजी के सपर्क तथा उनकी विविध रचनात्मक प्रवृत्तियो की रोचक एव सारगर्भित सामग्री प्रदान करती है।

हमे हर्ष है कि उनकी तीसरी पुस्तक 'मडल' द्वारा निकल रही है। इस पुस्तक मे उन्होने अपने वकालती जीवन के वे अनुभव दिये हैं, जो अदालतो और वकालत के पेशे मे फैली हुई बुराइयो को दूर करने के उपाय वताते हैं।

यह पुस्तक मूल रूप से अग्रेजी मे लिखी गई है और इमका अनुवाद श्री सतराम 'विचित्र' ने किया है।

पहली दो पुस्तको की भाति यह पुस्तक भी अत्यत उपयोगी है। हमे विश्वास है कि इमका सर्वत्र स्वागत होगा और जो भी इसे

पढेगा, उसे लाभ ही होगा ।

हमे इस बात का बडा खेद है कि यह पुस्तक लेखक के जीवन-काल मे प्रकाशित नही हो सकी। वह अपनी इन तीनो ही पुस्तको को 'मडल' से निकलते देखने के बडे अभिलाषी थे। लेकिन इस पुस्तक के प्रकाशन मे असामान्य विलम्ब हो गया। हम उनकी स्मृति को अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करते है।

—मन्त्री

आमुख

वकालती जीवन के मेरे अनुभवो मे जो सुख और दुख की मिश्रित भावनाए है, उन्हे पाठको के साथ मिल-बाटने के लिए मैं यहा उपस्थित कर रहा हू। इससे भी अधिक मैं इस बात से हैरान हू कि इनके सबध मे पाठको की क्या प्रतिक्रिया होगी। यह सोच-सोचकर मैं काफी घबराहट महसूस करता हू। यदि उनकी सहानुभूति मेरे साथ रही तो सभव है, वकालती जीवन के माध्यम से समाज की सेवा करने का जो आनद मैं प्राप्त कर सका हू, उसमे वे भी भागीदार हो सकेगे। लेकिन यह भी सभव है कि पाठको मे ऐसे अनुदार व्यक्ति भी हो, जो मेरे इस साहित्यिक प्रयास को अन्यथा समझे। वे मेरी इन कथित सफलताओ को आत्मप्रशसा का ढिढोरा पीटने और अहकारवश अपनी तारीफो के पुल बाधने का प्रयास बतायगे। यदि ऐसा समझा जायगा, तो बहुत बुरा होगा। फिर भी, जब पुस्तक प्रकाशित हो ही रही है तो मुझे सब प्रकार की टीका-टिप्पणी के लिए तैयार रहना होगा। मेरे लिए तो इतना ही काफी है कि जहातक मेरा सबध है, जिस उद्देश्य ने मुझे इन अनुभवो को लिखने की प्रेरणा दी, वह व्यक्तिगत या

कानूनी दृष्टि से, आत्मश्लाघा से प्रेरित कभी नही रहा।

अब मै आगे एक अन्य सबधित प्रश्न का भी उत्तर देना चाहता हू। मैंने कुछेक ऐसे ही मुकदमे क्यो चुने, जिनमे मै वकील था, और उन्हीके बारे मे मैंने क्यो लिखा ? इसका स्पष्ट उत्तर यह है कि जीवन के विभिन्न क्षेत्रो मे अपने अनुभवो को निजी सुख के लिए लिखने ने ही मुख्यत मुझे इसके लिए प्रेरणा दी। इसके साथ ही मुझे यह भी आशा थी कि मेरे अनुभव शायद उन युवको का मार्ग-दर्शन कर पायगे, जो पूर्व पीढ़ी के व्यक्तियो के अनुभवो को अपनाने का महत्व समझते है। प्रस्तुत पुस्तक मेरे जीवन के एक ही अग का उल्लेख करती है, अर्थात्, मेरा वकालती जीवन। इससे यह प्रकट होगा कि मैं वकालत को श्रेष्ठतम पेशो मे से एक मानता हू और मेरी यह भी मान्यता है कि इसमे सपूर्ण मानव-समाज का सर्वाधिक कल्याण करने की अकथित सभावनाए हैं। इतना होने पर भी मैं अदालतो मे अपने उन वास्तविक अनुभवो की सचाई से भी मुह नही मोड सकता, जिनसे साफ जाहिर हो जाता है कि इस पेशे मे आदर्श नाम की तो कोई बात ही नही रह गई है, और इसे अपनानेवालो का एकमात्र लक्ष्य अपने लिए अधिकाधिक पैसा कमाना बन गया है। समाज-सेवा का आदर्श कही दिखाई नही देता। साध्य और साधनो की चिंता किये बिना वकीलो के लिए कमाई और मुवक्किलो के लिए जीत का बोलबाला है। नि सदेह कही-न-कही एकाध व्यक्ति तो अपवादस्वरूप इस पेशे मे भी हैं ही।

वकीलो को छोडकर, समाज का भी अपना दृष्टिकोण है। यदि

सही तौर पर समझा जाय तो जीवन के किसी भी क्षत्र मे काम करना एक ऐसा साधन है, जिससे मानव-सेवा करने के साथ-साथ ज्यादा से ज्यादा आत्मिक उन्नति भी प्राप्त की जा सकती है। लेकिन इसके बदले इस भौतिक युग मे हमारे जीवन का लक्ष्य किसी भी कीमत पर निज के लिए पैसा बनाना हो गया है। बात तो यह दुख की ही है कि जीवन के हर क्षेत्र मे 'साध्य ही साधन की कसौटी है' मान्य दर्शन वन गया है, और यह कोई आश्चर्य की बात नही कि वकील भी इस प्रचलित सिद्धात के अनुगामी बन गए है। लेकिन एक बार इस सिद्धात को मान लेने पर कानूनी पेशे मे श्रेष्ठता या उच्च ध्येय के लिए कोई स्थान नही रह जाता।

वकीलो के नैतिक पतन के कारण मुझे हमेशा ही दुख और निराशा हुई है। उनसे मुझे आशा थी, और आज भी है कि वे समाज की उन्नति तथा सचालन मे सर्वाधिक महत्वपूर्ण योग प्रदान करेंगे। उनकी शिक्षा और उनके स्तर की दृष्टि से उनसे यह आशाए की ही जानी चाहिए। लेकिन सन् १९१३ और १९३७ के बीच वकालत करते समय मैंने अपने चारो ओर जो देखा, उससे मैं इस दुखपूर्ण नतीजे पर पहुचा कि कानूनी पेशे के नैतिक स्तर मे लगातार गिरावट होती चली गई है। अपने ही लिए कमाई के सीमित आदर्श को सामने रखने से और 'साध्य ही साधन की कसौटी है' के सिद्धात पर अमल करने से, वकील न सिर्फ अपनी बल्कि सारे समाज की जो अपार हानि करता है, उसकी ओर सबका, और खासकर युवक वकीलो का ध्यान आकर्षित करना मैंने उचित समझा।

मैंने उदाहरण-स्वरूप कुछ ऐसे मामले चुने हैं, जिनमें मेरे कई वकील-साथी सारा विवेक खोकर सत्य, न्याय और समानता के तर्क-सगत विचारों को सर्वथा भुला बैठे। मुझे यकीन है कि मेरे पाठक केवल यही धारणा नहीं बना लेंगे कि जिन बुराइयों की कालिमा इन अनुभवों में है, वह सब वकीलों में और उन सब मुकदमों में भी थी, जिनमें मैंने भाग लिया। मुझे यह याद करके खुशी होती है कि अपवाद स्वरूप निष्ठावान और ईमानदार वकील भी थे। वैसे जो मैं कह चुका हूं और अब कहूंगा, उससे यह बात मेल नहीं खाती। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि वर्ग विशेष के रूप में वकील समाज का ढाचा बनाने के लिए विशेष रूप से उपयुक्त है। इसलिए मुझे जो भी बुराई दिखाई दी है, उसका इस कथन के समर्थन में उल्लेख करना और दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं का हवाला देना भी मुझे आवश्यक जान पड़ा। विशेषकर इसलिए कि जिन घटनाओं को मैंने चुना है, उन्हें अपवाद कहकर टाला नहीं जा सकता।

सन् '३७ में बम्बई विधान-सभा का अध्यक्ष चुने जाने तक मैं इन सब महत्वपूर्ण मामलों की मन में सूची बना चुका था। तबसे लेकर जब-जब समय मिला, मैं एक-न-एक अध्याय लिखता रहा। और अंतिम अध्याय सो अगस्त १९५४ में लिखा गया था।

मेरे मित्र (स्व०) श्री देवदास गांधी ने इन अनुभवों को 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के साप्ताहिक संस्करण में प्रचारित किया। इससे मुझे अनेक लोगों की प्रतिक्रिया जानने का अवसर मिला। मेरे कई युवा-वकील-मित्रों ने मुझसे कहा है कि इन लेखों से उन्हें अपने व्यवसाय के सच्चे

आदर्शों का पालन करने की प्रेरणा मिली है। वैसे भी कई लोगो ने मुझे प्रशसापूर्ण पत्र लिखे और वकालत मे जिस नैतिक विधान का मैंने समर्थन किया था, उसके लिए बधाइया भी दी। हा, एक वकील-भाई को मेरी सचाई पर शका भी हुई। उन्हे शक था कि मै किसी पूजीवादी पत्र का एजेन्ट हू, अथवा 'उच्चता के भाव' से पीडित हू, जिसमे छुटकारा पाने के लिए मैं दूसरो की निंदा करता हू।

इस पुस्तक का सग्रह एक अन्य बडी योजना, अर्थात् मेरी 'आत्मकथा' का अग है। मैंने इस पुस्तक के सस्मरणो को मूलत निजी सतोप के लिए लिखा है। यह मेरे सुखो और दुखो की स्मरण-कथाए है। यदि इस पुस्तक से आज के सघर्पशील युवा-वकीलो को मार्ग-दर्शन मिला और उनके लिए यह शक्ति का स्रोत वन सकी तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी। अगर मेरे इन सस्मरणो की मशाल जलती रखने मे, पेशे के ऊचे आदर्श को कायम रखने मे और धन के लोभ के गड्ढो से बचने मे कतिपय वकीलो की मदद हुई तो मैं समझूगा कि मेरे प्रयत्नो को आशातीत पुरस्कार मिल गया है।

इन अनुभवो को लिखने का प्रोत्साहन देने के लिए मैं अपने मित्र श्री देवदास गाधी को धन्यवाद देता हू, जिन्होने पुस्तक प्रकाशित करने का श्रम और उत्तरदायित्व अपने ऊपर लिया। मै अपनी युवा-मित्र श्रीमती भारती साराभाई का भी आभारी हू, जिन्होने मेरे लिए टाइप को हुई पाडुलिपि को पढने का कष्ट उठाया और कुछ भाषागत परि-वर्तन भी सुझाये।

—ग० वा० मावलकर

विषय-सूची

मेरा वकालती जीवन

लेखक

मेरा वकालती जीवन

: १ :

मैं वकील कैसे बना ?

मेरे पिताजी बवई विश्वविद्यालय से बी० ए० और एल-एल० बी० करने के वाद प्रातीय न्याय-विभाग मे जज वन गए। उनका जज-जीवन का अल्प किंतु प्रतिभाशाली कार्यकाल अदालती कामो और वकीलो के साथ व्यस्त रहने मे ही बीता।

अपनी इस नौकरी के दौरान मे, एक से दूसरे ताल्लुका मे निरतर उनकी वदली होती रही। इस प्रकार, पिताजी ने जिन विभिन्न स्थानो मे कार्य किया, वहाँ के वकीलो से मै प्राय परिचित-सा हो गया था। नि सदेह, उस छोटी उम्र मे जो-जो बाते मैंने उनकी देखी, उनकी याद तो मुझे है नही, लेकिन दस मे सोलह साल की उम्र तक की बाते मुझे भली प्रकार याद है। और मेरे सोलहवे वर्ष मे ही पिताजी का देहात भी हो गया था। इस तरह, पिताजी के मित्रो मे वकीलो की वहुत वडी सख्या थी।

छोटे-छोटे नगरो मे जहाँ भी पिताजी जज की हैसियत से रहे, अदालती समय के वाद सध्या समय हमारा घर एक सामाजिक क्लब-सा वन जाता था। प्रमुख वकील और अन्य व्यवसायो के प्रतिष्ठित व्यक्ति प्राय: नित्य ही हमारे यहाँ एकत्र होते, और अनतर सारा समूह थोडे समय के लिए, अनेक विपयो पर वातचीत करता रहता।

परिवार के बालक होने के कारण न तो हम उस विशिष्ट समूह में शामिल होते थे, और न ही उनके पास खड़े रहने तक का हमें अधिकार था। फिर भी, जब कभी हमें उनमें से किसी एक की छोटी-मोटी सेवा के लिए कहा जाता तो हमें उन लोगों की बातें सुनने का अच्छा-खासा अवसर मिल जाता।

इससे सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि अपनी छोटी-सी दुनिया से संबद्ध क्षेत्रों के कानून-वेत्ताओं से मैं किस प्रकार परिचित हुआ। लेकिन यह भी सर्वथा सत्य है कि जिन विषयों पर उनमें विवाद होता, वे हमारी बुद्धि की पकड़ से परे के होते थे। और इसलिए, इस बात का दावा मैं नहीं कर सकता कि जो विवाद चल रहा होता, उसे मैं समझ ही जाता था। पर इतना तो मैं समझता ही था कि स्थानीय अदालत के उच्चाधिकारी होने के नाते यद्यपि वे लोग मेरे पिताजी का आदर करते थे, तथापि हमारे घर पर उनके साथ उनके व्यक्तिगत संबंध सर्वथा बेतकल्लुफ होते थे।

इन लोगों में जो चर्चाएं होती थीं, उनमें उच्च न्यायालयों द्वारा स्थिर पिताजी के कानूनी फैसलों से लेकर साहित्य और सार्वजनिक हित संबंधी अनेकानेक विषय होते। यह खयाल किया जाता था कि पिताजी के फैसले इतने सही और तर्क-सम्मत होते कि बड़ी अदालतों में वे कभी रद्द नहीं हुए। मेरा यह भी मत था कि इस समूह के सभी सदस्य जिस तरह एक दूसरे की इज्जत करते उसी भांति उस छोटे-से नगर में हर कोई उनकी इज्जत करता था।

तदनुसार, स्वभावतः न्यायालयों, जजों तथा वकीलों के प्रति एक प्रकार की दिलचस्पी और आदर की भावना मुझ में समुन्नत हो गई। तो भी, मुझे यकीन था कि मैं जज या वकील कभी नहीं बनूंगा। इससे भी बढ़कर यह कि इस बात का विचार तक मुझे नागवार लगता था। और ऐसा क्यों था, इस विषय में उस समय मेरी कोई खास धारणा भी नहीं थी। जिन दिनों मैं मराठी स्कूल में पढ़ता था, और बाद में जब

अगरेजी स्कूल मे चला गया, तो कई बार मेरे सामने यह प्रश्न आया कि मै जज, वकील या डाक्टर मे से क्या बनना चाहूँगा। और निस्सकोच मेरा उत्तर था कि मै डाक्टर बनना पसद करूँगा। ये सारी बाते १८९५ से १९०३ के बीच की है।

फरवरी, १९०४ मे मेरे पिताजी का देहात हो गया। उन दिनो मै मैट्रिक मे था। मै सही-सही नही जानता कि मेरे भावी जीवन के विषय मे उनकी क्या धारणाएँ थी, लेकिन एक धुँधली-सी योजना उनके मन मे यह थी कि मै किसी टैक्नीकल विषय मे विशेष योग्यता हासिल करूँ। अभी रूस-जापान के उस युद्ध का विस्फोट नही हुआ था कि जिसे वर्तमान सदी के प्रारभिक वर्षो पर छा जाना था। किंतु पिताजी ने इससे पूर्व ही सूर्योदय के देश को मेरी शिक्षा का स्थान निश्चित कर लिया था। स्वभावत, ये सारी योजनाएँ उनकी असामयिक मृत्यु के कारण धराशायी हो गई।

स्कूली जीवन तक मेरे लिए यह प्रश्न सर्वथा महत्वहीन था कि मुझे किस दिशा मे विशिष्टता हासिल करनी है। १९०४ मे मैने मैट्रिक की परीक्षा पास की, और तब वह समय आया जब कि मुझे अपने व्यवसाय के बारे मे निर्णय करना था। सर्वप्रथम व्यवसाय मैने डाक्टरी को ही पसद किया और इसके न होने पर दूसरा व्यवसाय मैने शिक्षा-क्षेत्र चुना। जहाँ तक कानून का सबध था, यह कहना सगत नही जान पडता कि मै उसे नापसद करता था, क्योकि उस छोटी उम्र मे ऐसी नापसदगी के लिए मेरे पास कोई कारण भी नही था।

फिर भी, उस समय मेरी यह राय थी कि वकीलो का समाज मे आदर है, क्योकि वे मुख्यत उसके उस धनिक वर्ग के लिए लाभकारी थे कि जो अपने धन के बल पर किसी भी वकील की सेवाएँ प्राप्त कर सकता है। और दूसरी ओर, दयनीय दशा यह है कि समाज मे बहुसख्या गरीबो की है।

फलत, मेरी प्रबल इच्छा ऐसे साधनो को पा लेने की थी कि जिनके द्वारा मै अपनी अधिकाधिक योग्यतानुसार अत्यत गरीबो की सेवा कर

गई। और इस प्रकार सरकारी नौकरी या विकल्प मे कानूनी व्यवसाय प्रति मुझे तनिक भी आकर्षण नही जान पड़ा। मुझे लगा कि केवल मात्र डाक्टरी-पेशा ही ऐसा है, जिसमे गरीबो और अभावग्रस्तो की सेवा करने के अधिकाधिक अवसर मिल सकते है।

समूचे समाज मे एक भी तो ऐसा व्यक्ति नही, जो कभी-न-कभी बीमार न पड़ता हो और रोग-मुक्ति के लिए परेशान न होता हो। और जो सहानुभूति के भावो से ओतप्रोत मसीहा बनकर नितात सेवा के आदर्श के साथ ऐसे पीड़ित व्यक्ति तक पहुँचता है, उस पर विश्वास करने से बढ़कर क्या वरदान हो सकता है! और इस प्रकार डाक्टर बनने की अभिलाषा मुझे अत्यधिक प्यारी लगी। कल्पनावश, मैंने अपने-आपको देखा कि मैं सेवक के रूप मे एक से दूसरे स्थान पर जा-आ रहा हूँ, और गरीबो की झोपड़ियो मे जा-जा कर उनके बोझ को हल्का कर रहा हू। वहा अत्यधिक रोग है, जिनसे संघर्ष करना होगा, और गदगी का इतना अबार है कि जिसे साफ करना होगा। बड़ा प्यारा लगा मुझे यह स्वप्न। किन्तु खेद है, यह पूरा होने वाला नही था, और यह स्वप्न ही बनकर रह गया। क्योंकि, मेरे अभिभावकों का कहना था कि मैं घर छोड़ कर अन्यत्र नही जाऊँ। ऐसी दशा में स्थानीय कालेज मे कला के विषयो को लेने के सिवा कोई चारा नही था। तिस पर, उन दिनों (१९०५) अहमदाबाद मे इससे अधिक शिक्षा विषयक सुविधाएँ भी उपलब्ध नही थी।

जिन दिनो मैं कालेज मे पढ रहा था, मेरे मन मे सामाजिक सेवा की अनेक योजनाएँ आई। १९०५ के बग-भग, और इसके सुधार के लिए, परिणामतः जो आदोलन हुआ, उसका देश के युवकों पर पर्याप्त असर पड़ा। मैने भी अपने देश मे उद्योग-विस्तार तथा भावी सतति को शिक्षित करने के लिए अपना भाग अदा करने का निर्णय कर लिया। फलत, मैने बी० ए० के ऐच्छिक विषयो मे इतिहास और साहित्य के स्थान पर भौतिक शास्त्र और रसायन शास्त्र के विषयो को चुना। ये

विपय मुझको बहुत ही पसद थे, और इनमे भी भोतिक शास्त्र मे तो मेरी खास दिलचस्पी थी ।

मेरी प्रवल इच्छा थी कि मैं डकन एजूकेशन सोसायटी, पूना जैसी शिक्षा सस्था से अपना नाता जोड़ूँ, और वहाँ आजीवन भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक के रूप मे कार्य करते हुए ऐसे विद्यार्थियो का निर्माण करू, जो आने वाले समय मे स्वदेशी उद्योगो के आदोलन मे उचित नेतृत्व ग्रहण करे । स्वदेशी आदोलन का ही यह स्पष्ट तथा तर्कसगत परिणाम था, किन्तु पुन होनी ही प्रबल रही, और यह स्वप्न भी अधूरा-का-अधूरा ही रह गया ।

यदि मुझको भोतिक शास्त्र मे अधिक अध्ययन करना था तो मेरे लिए ववई जाना आवश्यक था । और यदि मै शिक्षा-व्यवसाय को अपनाता तो मुझको अपने पुरखो के घर को सदैव के लिए नही, तो जीवन के वहुत बडे हिस्से के लिए तो छोडना ही पडता। दोनो वाते मेरे अभिभावको के लिए अत्यधिक चिता का कारण थी । और अन्य परिस्थितियो ने भी उन्ही का साथ दिया ।

१९०८ मे बी० ए० कर लेने पर मैं दक्षिण-फैलो बना । फैलोशिप का यह वर्ष (१९०९) मैंने वस्तुत बडे आनन्द मे विताया । मै भौतिक-विज्ञान-शाला मे अनुसधान करता और इटर के छात्रो को तर्क-शास्त्र पढाता था । लेकिन जव फैलोशिप का वर्ष समाप्त हुआ तो पुन वही प्रश्न आया, अव आगे क्या करना होगा । स्वभावत पुन भौतिक-शास्त्र मे एम० ए० करने का मेरा विचार हुआ ।

किंतु इसी वीच परिवार के कुछेक मित्रो ने मेरे असली अभिभावक मेरे नाना पर जोर डाला कि मुझको कानून के अध्ययन मे लगाया जाय । मेरे कानून-अध्ययन के वारे मे उनको जो वडी-वडी आशाएँ थी, वह अनुचित भी नही थी । उन्हे आशा थी कि चूकि मेरे पिताजी न्यायविभाग के अतिविशिष्ट सदस्यो मे थे, और चूंकि मेरे दादा और परदादा भी वडे-वड़े पदो पर सरकार की सेवा कर चुके थे, इसलिए अगर मैं कानून पास

कर लूं तो प्रान्तीय सेवा में मेरे लिए सब-जज बनने का अच्छा-खासा मौका है। मेरी अन्त -भावनाएँ क्या थी, मेरे नाना, मेरी मां, मित्र तथा परिवार के अन्य हितैषी तनिक भी महसूस नही करते थे।

बडो की सलाह का अनुपालन करना ही चाहिए, इसलिए मैंने कानून के अध्ययन का निर्णय किया। लेकिन ऐसा करते समय मेरा कदापि यह विचार नहीं था कि मैं वकालत ही करूँगा अथवा उसके बल पर अन्य व्यवसायो को लाभकारी सेवा का आधार बनाऊंगा। विपरीतत, यह तो मेरी सेवा की महत्वाकाक्षा के सर्वथा प्रतिकूल दृष्टिकोण था। जो हो, बडो के प्रति जो मेरी कर्तव्य-भावना थी, उसी की प्रेरणावश मैंने उनकी इच्छाओ के पालन का निश्चय किया। वैसे मैं भली प्रकार जानता था कि कानून-अध्ययन के भी अनेक लाभ है।

इससे भी अधिक, यदि मुझको कानून पढ़ने के लिए बबई में रहने की स्वीकृति मिल जाती है तो मैं भौतिक शास्त्र मे एम० ए० करने के लिए भी इस अवधि को सहज बढाया दे सकूंगा। एक ही तीर से दो शिकार मार लेने की सभावना से मैं फूला नही समाया।

कानून का पहला वर्ष तो मैंने भली प्रकार पूरा कर लिया, लेकिन दुर्भाग्यवश, उसके बाद, १९१० मे काफी लबे अर्से तक बीमार रहा। इससे बबई मे दीर्घ काल तक रह सकने की मेरी आशाओं पर पानी फिर गया। कानून के अतिम वर्ष मे मैं बडी कठिनाई से अपनी हाजिरियाँ पूरी कर पाया और १९१२ मे विशिष्ट योग्यता के साथ मै परीक्षा मे सफल हुआ। किंतु इस बीच अध्ययन सबधी अधिक परीक्षाएँ पास करने का मुझमे तनिक भी उत्साह नही रह गया था। और फलत, अब मैं पूर्ण रूप से 'बी० ए०, एल्०-एल्० बी०' हो गया था।

अब पुन. मेरे सामने वही प्रश्न था, आगे क्या करना होगा ? मैं किसी भी शिक्षा सस्था में प्रोफेसर नही बन सकता था, क्योंकि मैंने एम० ए० नहीं किया था। मात्र उपाय यही था कि मैं वकालत करूं या

सब-जज बनने का यत्न करू। इसी असमजस मे मैने सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसाइटी का सदस्य बनने की चेष्टा की।

किन्तु पुन मेरे परिवार के कुछेक उन वयोवृद्ध मित्रो तथा अन्यो ने, जो उस समय सार्वजनिक जीवन मे अग्रणी एव उसके पूर्ण जानकार थे और जो सर फिरोजशाह महता, सर डी० इ० वाछा, सर भालचन्द्र कृष्ण, श्री जी० के० गोखले जैसे बडे-बडे नेताओ से भी भली प्रकार परिचित थे, मुझे सलाह दी कि राजनीति को पेशे के तौर पर मुझे नही अपनाना चाहिए। सबने वकालत करने पर ही जोर दिया। उनका विश्वास था कि वकालत करते समय मुझे साधारणतया समाज से और विशेषत विशिष्ट व्यक्तियो से निकट सपर्क स्थापित करने के अधिक अवसर प्राप्त होगे। उनका खयाल था कि वकालत के बल पर मै सार्व-जनिक सेवा के लिए साथियो एव सहयोगियो का एक क्षेत्र बना लूंगा। और यदि मै उनमे पर्याप्त विश्वास पैदा कर सका तो फलस्प, समाज-सेवा के अधिकाधिक मार्ग बनते जायँगे, और अतत अपने समाज की सेवा और उसके कल्याण मे ही अपने जीवन को अर्पित करने योग्य बन सकूंगा। यह कहते मुझे प्रसन्नता होती है कि मैने उनकी नि स्वार्थ राय को स्वीकार किया, और १९१३ की फरवरी के अत मे मैने वकालत करनेवालो की श्रेणी मे अपना नाम दर्ज करा लिया।

इस तरह घटना-क्रम मे अकस्मात मै वकील बन गया, और व्याव-सायिक जीवन के प्रारभिक चरणो मे मैने वकालत शुरू कर दी। इस सबको देखते हुए मै यह कदापि नही कह सकता कि प्रबल इच्छा या 'पूर्व निश्चय' के फलस्वरूप ही ऐसा हुआ। विपरीतत, वकालत का श्रीगणेश तो मेरी मान्यताओ के सर्वथा प्रतिकूल था।

जो भी हो, इस प्रश्न को एक अन्य दृष्टि से देखते हुए मानना होगा कि यद्यपि मै 'स्व-इच्छा' से वकील नही बन गया था तथापि 'पूर्व निश्चया-नुसार' ही यथार्थ निर्णय हो गया। दार्शनिको के विचार मे 'स्व-इच्छा' की अभिव्यक्ति का यह भिन्न रूप है।

अपने जीवन के गति-क्रम को देखते हुए मैं इस ख़याल से 'भाग्य-चक्र' का निशानी बन गया कि हमें अपनी आन्तरिक भावनाओं को सक्रिय रूप देने के लिए यथाशक्ति जो भी बन पड़े, करना चाहिए। बस यहीं तक हमारा कर्त्तव्य है। इच्छित फल की आशा में अधिक संभावना यह भी हो सकती है कि अन्ततः निराशा से ही पाला पड़े और इस स्थिति के फलस्वरूप जीवन निराशामय बन जाता है। ऐसे निराशापूर्ण जीवन के कारण हम समाज को जो अधिकतम सेवाएं प्रदान कर सकते हैं, वह मूलतः क्षति हो जा सकती है। भगवान् कृष्ण ने भी गीता में कहा है

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि॥

अर्थात्, तुमको कर्म करते रहना चाहिए, और उसके फल की आशा कदापि नहीं। इसलिए कर्मफल की आशा न रखते हुए निरंतर कर्म करने में ही संलग्न रहो। अकर्मण्य कभी मत बनो।

: २ :

वकील का कर्तव्य

यद्यपि मैं पूरी तरह से इस वकालत के पेशे के प्रति आकर्षित नही था तथापि इस पेशे को मैं सम्मान की दृष्टि से देखता था और इसका प्रशसक भी था। क्योकि सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश करने का यह एक अच्छा-खासा अवसर प्रदान करता था। इस समय के तकरीबन सभी नेता असाधारण योग्यता सपन्न वकील थे, अथवा रह चुके थे। अत. कानून का अध्ययन जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण सामग्री है, इस रूप मे मैंने उस समय कानून को देखा था।

अपने नाम के पीछे लगी बवई विश्वविद्यालय की कानून की डिग्री के पुछल्ले को विभिन्न व्यवसायो और नौकरियो मे प्रवेश पाने का एक साधन मान कर मैं कतई सतुष्ट नही था। इसलिए मै परीक्षाओ से सहज पार लगाने वाली 'कुजियो' और सहायक पुस्तिकाओ से दृढतापूर्वक दूर ही रहा और मैंने निर्वारित विभिन्न विपयो की प्रामाणिक पुस्तको का अध्ययन आरभ कर दिया। कानून विपयक नियमो के विद्यमान मूल कारणो ओर सिद्धातो मे मेरी अत्यधिक दिलचस्पी थी और महज निष्कर्पो को मैं गौण मानता था।

यह कहने की आवश्यकता नही कि इस प्रकार के अध्ययन ने वकालती जीवन मे मेरी वडी सहायता की। मुझे भली प्रकार याद है कि लॉ कालेज के अदूरदर्शी सहपाठी मेरे इस अध्ययन का किस प्रकार मज़ाक उडाया

करते थे। मुझको वे 'मूर्ख आदर्शवादी' कहते थे कि जो मेन के 'हिंदू ला' या 'पोलक और मुल्ला के कन्ट्रैक्ट एक्ट' अथवा 'इक्विटी के प्रमुख मुकदमों" की मूल पाठ्य-सामग्री से मगजपच्ची में लगा रहता। क्या मैं वस्तुत मूर्ख नही था? ये कुजियाँ बनी-बनाई ऐसी गोलियाँ थी, जिन्हे निगल कर सारा पाठ्य-क्रम दो या तीन माह से कम समय मे पूरा कर लिया जा सकता था। और इस प्रकार पढाई से काफी समय बचाकर उसे मनोरजन या अन्य कामो मे लगाया जा सकता था।

उन दिनो (१९११-१२) यह एक आम चलन था कि गवर्नमेंट लॉ स्कूल में, जो एल्फिंसटन कालेज की इमारत के पास ही था, जब कक्षाएँ लगी हो तो बबई के अपोलो बदर पर सैर-सपाटा किया जाय। किंतु हाजिरी लगवाने का खयाल तो रखा ही जाता था चाहे किसी भी दोस्त के द्वारा बुलवा कर ही लगवाई जाय। मैं यह नि सकोच कह सकता हूँ कि इस आचरण के विरुद्ध मेरे नैतिक विरोध का मेरे अधिकाश मित्रो पर कोई असर नही हुआ। ज्ञान-प्राप्ति का आदर्श स्वत ही एक लक्ष्य है, इसे दर गुजर भी कर दे, तो भी केवल मात्र स्व-उन्नति की उनकी अभिलाषा के लिए कानून के सिद्धातो का गहन अध्ययन अत्यावश्यक है, इस बात तक को वे स्वीकार नही करते थे।

कानून को सभ्य-समाज का मैं प्राण मानता हूँ। समाज की प्रगति और अनुपालन के लिए इसका अध्ययन और प्रयोग भी अत्यावश्यक है। फलत, मेरा विश्वास था कि सबसे अच्छा कानून वह है, जो न्याय एव समता के नैतिक महत्वो की सुदृढ बुनियाद पर स्थिर हो, और एक वकील का मुख्य कृत्य यह देखना है कि कानून की उस बुनियाद को न केवल स्थिर रखा जाय प्रत्युत उसे मजबूत भी बनाया जाय। जब यह सब कहा और किया जाता है, तो नियमो और अधिनियमो की उस सहिता से क्या भौतिक लाभ हो सकता है कि जो सामान्यत समाज के विकास को उन्नत नही करती?

व्यक्तिगत स्वतत्रता और पारस्परिक अच्छे सबधों की रक्षा के लिए

यह आवश्यक है कि समष्टि रूप मे समाज के सामान्य हितो की दृष्टि से व्यक्ति के कार्यकलापो पर जो बदिशे लगाई जाती है, प्रत्येक व्यक्ति उनका स्वेच्छापूर्वक पालन करे । इस प्रकार सबधित लोगो को अपने कर्त्तव्यो की पवित्रता को तो मान्यता देनी ही चाहिए ।

प्रत्येक उन्नतशील समाज की नीव इन्ही बातो पर टिकी हुई है । वस्तुत, जबतक समाज का हरेक आदमी यह महसूस नही करता कि उसके अधिकार सुरक्षित है और कोई भी उनका बलात् अपहरण नही कर सकता, तबतक कोई भी समाज ठोस इकाई का रूप नही धारण कर सकता । और विपरीतत, यह तभी सभव है जब प्रत्येक व्यक्ति उसे सौंपे गए कृत्यो का खुशी-खुशी पालन करने के लिए तत्पर रहे । दूसरे शब्दो मे यूँ भी कह सकते है कि जब लोग अपने अधिकारो की अपेक्षा अपने कर्तव्यो के प्रति अधिक सजग रहेगे, तब सुख और कल्याण सबधी अधिकार अधिकाधिक मात्रा मे प्राप्त होते जायगे ।

इस विषय को प्रकट करने के लिए यह स्थूल विचार काफी है कि परिसीमन, रजिस्ट्री आदि जैसी कानून की पारिभाषिक धाराएँ या जाब्ता समाज की अधिकतम सख्या के अधिकतम हित के विचार पर आधारित है । इसका सहज लक्ष्य समाज के प्रत्येक सदस्य को ज्यादा-से-ज्यादा सुरक्षा प्रदान करना है , और साथ-ही-साथ ईमानदारी एव सदाचार के पथ से भ्रष्ट होने की प्रवृत्ति को कम करना है । मनुष्य होने के नाते यह निश्चित है कि हमारे कानूनो मे अनिवार्यत त्रुटियाँ भी होगी और हर मामले मे न्याय भी नही हो पाता । कभी-कभी, परिस्थितिवश, किसी व्यक्ति को यहाँ तक महसूस होने लगता है कि उसके मामले मे नैतिक या समानता के स्तरो की भी उपेक्षा कर दी गई है ।

फिर भी, सार रूप मे यह कह सकते है कि अधिकतम सख्या के अधिकतम हित की उन्नति करना ही इसका आधार एव इसके अस्तित्व का कारण है । प्रयोग रूप मे इसकी क्रियाशीलता से व्यष्टि और समष्टि

को न्याय के नैतिक स्तर पर, जितना भी ज्यादा-से-ज्यादा संभव हो, कल्याण-प्राप्ति होनी चाहिए।

कानून की कार्यकारिता के बारे में क्योंकि मेरा यह दृष्टिकोण था इसलिए स्वभावतः मैं वकालत के पेशे को अत्यधिक सम्मानित एवं प्रतिष्ठित समझता था। मेरी आंखों के सामने उन प्राचीन कानून-वेत्ताओं और विशेषकर रोमन न्यायाधीशों की परिपूर्णता के आदर्श घूम जाते कि जिनके बारे में मैंने पढ़ रखा था। कानून का विशेषज्ञ होने के नाते एक वकील का यह कर्तव्य है कि वह कानूनी मामलों पर जन-साधारण को मशविरा दे। उसे यह आश्वासन देना चाहिए कि प्रत्येक मामले का फैसला यथासंभव नैतिक स्थिति के प्रायः करीब-करीब ही होगा। इतने पर भी मनुष्य-बुद्धि के कारण यह संभव नहीं जान पड़ता कि हर मामले में शत-प्रति-शत न्याय ही हासिल हो जाय।

अपने इस दृष्टिकोण को मैं एक मिसाल दे कर स्पष्ट करता हूं। यदि मुझे यह पक्का यकीन हो कि 'अ' को 'ब' का कुछ ऋण देना है, तो मैं अपने 'अ' मुवक्किल पर ऋण का भुगतान कर देने के लिए पूरा जोर डालूंगा। यदि वह ऐसा करने में असमर्थ हो, और यहां तक कि यदि कानून की दृष्टि से 'ब' के दावे की म्याद भी चुक गई हो तो मैं इस पर जोर डालूंगा कि वह 'ब' से कर्जे की छूट के लिए प्रार्थना करे। यह तो मानना ही होगा कि म्याद के तर्क के बल पर मेरा मुवक्किल जीत जायगा। इसके विपरीत, यदि मेरा मुवक्किल नैतिक जिम्मेदारी को निभाते हुए ऋण चुका देता है तो उसके इस कृत्य से समाज की अधिकाधिक उन्नति एवं प्रगति होती है। यह वस्तुस्थिति न केवल समाज के दृष्टिकोण से ही ऊंचे लक्ष्य की समझी जायगी प्रत्युत 'अ' के व्यक्तिगत दृष्टिकोण से भी उत्कृष्ट होगी। एक ईमानदार ऋणी के रूप में उसकी जो साख बनेगी वह म्याद के तर्क से बचाई हुई रकम की अपेक्षा निश्चय ही उसके जीवन की बहुत बड़ी कमाई होगी।

मेरी दृष्टि में वकील एक विशेष जिम्मेदार व्यक्ति है। वह समाज

के दावे के अन्तर्गत उसका प्रतिनिधि बन कर न्याय के प्रशासन-तत्र मे अनेक प्रकार से हाथ बटाता है। यदि वह चाहे तो नैतिक आचरण के ऊँचे स्तर को हासिल करने के लिए सामाजिक चेतना को जागृत कर सकता है। और जीवन के किसी भी क्षेत्र मे सामूहिक उन्नति के लिए यह स्थिति नितात आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, समाज के विभिन्न स्तरो के व्यक्तियो के मासिक अध्ययन के भी उसे अनेकानेक अवसर मिलते हैं। उनमे वह पति और पत्नी, भाई और भाई तथा पिता और पुत्र के घनिष्ठ सबधो को प्रभावित करनेवाले गभीर प्रश्नो पर अपनी सलाह देता है। यदि वह चाहे तो वह सही सलाह देकर पारस्परिक विश्वास, सदिच्छा और सहयोग की भावना को सुदृढ बना सकता है। वह सहनशीलता, उदारता, ले और दे की भावना को प्रोत्साहन दे सकता है, और साथ-ही-साथ पारस्परिक स्नेह एव प्यार की स्वाभाविक भावनाओ को सुदृढ बना सकता है।

वस्तुत, वह सामाजिक सबधो के कारण असख्य मानव-प्राणियो की मुसीबतो को दूर करने मे प्रबल सहायक बन सकता है। इस प्रकार के सघर्ष मे सबधित दलो, चाहे वे सबधी हो, मित्र हो या साथी, के विचारो मे अपनी सही सलाह से परिवर्तन के द्वारा शुभ परिणाम हासिल कर सकता है।

इस प्रकार, कानूनी व्यवसाय के सदस्यो के कार्यो के महत्व और भलाई अथवा बुराई के लिए प्रभावित करने की उनकी अतुल क्षमता के बारे मे शका नही की जा सकती। और वस्तुत, वकील समाज ने विश्व भर मे सभ्य जीवन की शुरुआत से ही समाज को बेहद लाभ पहुँचाया है।

इतना महान दावा करने के बावजूद भी यह अत्यधिक दुर्भाग्य की बात है कि वकील के बारे मे जनता मे सर्वथा विपरीत धारणा है। और उसकी यह धारणा अनुचित भी नही है। कारण यह है कि समग्र रूप मे वकील व्यवसाय ने उन ऊँचे आदर्शो को सामान्यत. तिलाजलि दे दी है कि जिसका विवरण ऊपर दिया गया है। वह विभिन्न कारणवश कर्तव्य-

पथ से भ्रष्ट हो गया है। और इन कारणो की व्याख्या करते समय, कतिपय परिस्थितियाँ सामने आ जाती है, जिनमे आर्थिक अग सबमे प्रधान है। वकील के बारे मे खयाल किया जाता है कि वह समाज का परान्न-भोजी प्राणी है। यह आम धारणा हो गई कि उसके दफ्तर और साथ-ही-साथ कानूनी अदालतो मे झूठ, धोखा और भ्रष्टाचार को बढ़ावा दिया जाता है, जैसे ही वह किसी मामले को हाथ मे लेता है तो यह भय उत्पन्न हो जाता है कि स्वाभाविक सबधो की सारी मिठास और कोमलता का अत हो जायगा।

एक निरीक्षक इन सब बातो को देखते हुए उस नतीजे पर पहुँचेगा कि वस्तुत, वकील उन तत्वों को क्रमश नष्ट करने वाला है, जो समाज के नैतिक आधार को चमत्कृत करते है। यह वस्तुस्थिति दुखप्रद है। किन्तु उस बात से इकार नही किया जा सकता कि जनता के विचारो मे कोई वजनदार औचित्य है जब कि वह इस व्यवसाय मे पैसा बटोरने-वालो की बेहद बढती हुई सख्या के अनुचित आचरण को देख कर ही राय बनाती है।

लगता है कि स्वत वकील भी दोष की इस भावना से बेखबर नही है, वरना वह समाज के अन्य सदस्यों से विपरीत अपने निजी आचारों की सहिता की रचना को क्यो आवश्यक समझता ? क्यो वह आम जनता से अलग अपने खडे होने की जगह को चुनता ? ईमानदारी के साथ निश्चित रूप से यह कहना कठिन है कि यह प्रेरणा विशुद्ध 'श्रेष्ठत्व की भावना' का परिणाम है या अपने व्यवसाय की त्रुटियो को छिपाने का एक आवरण मात्र। जहाँ तक मेरा सबध है, मै वकील के नैतिक आचारों की सहिता के कुछेक ऐसे विषयो मे अपने-आपको सतुष्ट नही कर पाया हूँ कि जो सर्वथा मान्य समझे जाते है। उदाहरण के लिए: जब कोई वकील यह कहता है, "किसी मामले की नैतिकता से मेरा कोई वास्ता नहीं है, मेरा कार्य तो केवल संबधित विषय के कानूनी पहलू पर राय देना और उसका समर्थन करना है", तो वह 'नैतिकता क्या है', और

'कानून क्या है'—इन दोनो को जुदा-जुदा रूप मे देखता है—जैसे कि नैतिक आचारो के साथ कानून का कुछ सरोकार ही नही, या जैसे कि कानून-शास्त्र की किसी भी प्रणाली का लक्ष्य विशुद्ध और पूर्ण न्याय न होकर महज 'कानूनी' न्याय ही दर्शाना है। विस्तृत दृष्टिकोण से देखे तो इस प्रकार का वकील यह भूल जाता है कि नैतिक पृष्ठभूमि के आश्रय पर ही कानून चिरस्थायी एव न्याय-सगत हो सकता है। इस प्रकार का आदमी कभी-कभी यह कहता सुना गया है, "मुझे अपने मुवक्किल के मुकदमे की सचाई या न्याय्यता की गहराई मे पैठने का कष्ट क्यो करना चाहिए ? यह करना तो जज का काम है, और अतत मुझको जज का रूप क्यो धारण करना चाहिए ? मै तो, वस्तुत अपने मुवक्किल के मुकदमे का समर्थन करता हूँ। मुझको इसकी चिता नही कि वह सही है या गलत अथवा नैतिक या अनैतिक है।" मै इस तर्क को भी स्वीकार कर लूगा बशर्तेकि मुवक्किल का मुकदमा पूरी तरह से और सचाई के साथ पेश किया गया हो।

: ३ :

जगह का चुनाव

वकालती जीवन के प्रारंभिक चरण में मैंने यह फैसला नहीं किया था कि मैं दीवानी या फौजदारी में से किस तरह की वकालत करूंगा। मैं बार के कुछेक बुजुर्ग वकीलों के सिवा प्रायः किसी से भी परिचित नहीं था। इनमें नाना के हमपेशा होने के नाते मेरा अधिक घनिष्ट परिचय तब हुआ जब मैं १९०८ में बी० ए० करने के बाद एक सामाजिक क्लब का सदस्य बना था। उन्हीं दिनों मेरे पिताजी के घनिष्टतम मित्रों में एक सज्जन[1] वकालत करते थे, जो मुख्यतः दीवानी के मुकदमे करते। उनको मैंने धर्म-पिता के रूप में ग्रहण किया और उन्होंने मुझको सहायक रूप में अपनाकर अपने दफ्तर में काम करने की स्वीकृति दे दी।

इसी बीच, जैसी कि आशा की जा सकती थी, इस बात पर बेहद विवाद और मतभेद छिड़ गया कि मुझको वकालत बंबई में करनी चाहिए या अपनी जन्मभूमि अहमदाबाद में ही अपनी वकालत जारी रखूँ। बंबई में मुझको अधिक आकर्षण लगा क्योंकि उस समय की धारणा के अनुसार वही ऐसा स्थान था जहां मुझे सेवा के अधिक विस्तृत अवसर मिल सकते थे। वहां फिरोजशाह मेहता, सर डी० ई० वाछा, सर गोकुलदास कहानदास पारेख और अन्य अनेक ऐसे व्यक्ति रहते थे, जिनका मैं बहुत आदर करता था।

---

१. स्व० श्री जी० आर० दभोलकर। १९३५ में उनकी मृत्यु हुई।

प्रवृत्ति की दृष्टि से भी मै सार्वजनिक जीवन मे उग्र आदोलन और विज्ञापनबाजी के तरीके की बजाय अपने-आपको शातिमय, रचनात्मक और सगठनात्मक कार्यो के लिए अधिक उपयुक्त मानता था। बबई मे वकालत करने से आशा थी कि हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय-आदोलन के नेताओ के साथ मेरा निकट सपर्क होगा और इस प्रकार सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश के लिए मुझे अति विशिष्ट अवसर मिल जायगे।

सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसायटी की एक शाखा उस समय बम्बई मे थी। मेरा विश्वास था कि यदि मै बम्बई मे जम गया तो देशवासियो की सेवा मे लगी हुई इस प्रमुख सस्था के साथ सम्पर्क बनाए रह सकूँगा। इस सस्था का आजीवन सदस्य बनने का भी मैने निश्चय किया था। इस विचार के समर्थन मे मुझको यह भी बताया गया कि बम्बई मे अपीलो की वकालत का काम सीधा-सादा और छल-कपट रहित होता है। अत उनकी वकालत का काम आदर्श वकील विषयक मेरी भावनाओ से सहज मेल खा जायगा।

साथ ही मुझको उन बुराइयो के बारे मे भी बताया गया, जो छोटी अदालतो मे वकालत के कामो के साथ अनिवार्यत सम्बद्ध होती है। इससे भी अधिक, मेरे पिताजी के वह मित्र भी पूर्णतया बम्बई के ही पक्ष मे थे कि जिनके दफ्तर मे मै काम करता था। उनका मत था कि मेरे जैसे आदमी के लिए अपने नगर की अपेक्षा वहाँ उन्नति करने के कही अधिक अवसर है। उन्होने मेरा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि दाजी अबाजी खरे और डी० बी० जी० एस० राओ जैसे ख्याति-प्राप्त वकील बूढे होने जा रहे है। अत इस क्षेत्र मे ऐसे होनहार नवयुवको की अत्यधिक आवश्यकता है, जो उनके रिक्त स्थानो की पूर्ति कर सके।

मेरे परिचित अन्य अनेक वकीलो ने, न केवल बम्बई का ही समर्थन किया प्रत्युत मेरे पास मुकदमो के नुक्ते भेज कर सहायता देने के भी वचन दिये। फिर भी बम्बई के प्रति मेरे आकर्षण का आधार यह नही था कि वहा मुझे मुकदमो के नुक्ते पा लेने और वकालत चल निकलने की आशा

थी बल्कि यह था कि वहां राष्ट्रीय आन्दोलन के नेताओं और सर्वेन्ट्स आफ इंडिया सोसायटी से निकट सम्पर्क का अवसर मिलेगा। मुझे लगा कि बम्बई जाकर मेरा सेवा करने का स्वप्न पूरा हो जायगा।

जहां तक मेरा सम्बन्ध था, मैं बम्बई जाने का पक्का इरादा कर चुका था। मेरी माता और मेरे नानाजी की बड़ी इच्छा थी कि हम सबको अपने पूर्वजों के ही घर पर रहना चाहिए, लेकिन वे भी प्रेरणा करने पर इस तजवीज को इस आधार पर मान गए कि अवकाश के दिनों में हम लोग सदा यहां आया करेंगे। अब कठिनाई केवल यह बाकी थी कि बम्बई का जलवायु मेरे स्वास्थ्य के लिए कहां तक अनुकूल होगा। अन्ततः, तजरुबे के तौर पर कम-से-कम एक वर्ष के लिए सारे परिवार को लेकर बम्बई जाने का निश्चय हमने कर लिया।

उस निर्णय के बाद, प्रायः एक मास के भीतर ही हमारे परिवार को एक गहरा आघात सहन करना पड़ा। हम सबका एक दूसरे के प्रति अत्यधिक प्यार था। मेरी एकमात्र बहन को म्यादी बुखार हो गया। हमारे अथक प्रयत्नों के बावजूद भी २० मार्च, १९१३ को उसकी मृत्यु हो गई। उसके अन्तिम काल का दृश्य आज भी मेरी आंखों में सजीव हो उठता है। रात के लगभग ११ बजे थे। हम सब उसकी खाट के पास बैठे थे। डाक्टर भी मौजूद था। हर सांस के बाद आने वाली सांस क्रमशः क्षीण होती जा रही थी और अन्त में एक आखिरी सांस के साथ वह चल बसी।

इस घटना का मुझपर गहरा असर हुआ। मेरे दिल और दिमाग पर इसका जो प्रभाव हुआ, उसका सही-सही वर्णन या उसकी प्रतिक्रिया का विश्लेषण मैं नहीं कर सकता। उसका स्पष्ट परिणाम तो अत्यधिक निराशा की भावना था और तदनुसार हमने कुछ समय के लिए बम्बई जाने की योजना को स्थगित कर दिया।

जून १९१३ में मैंने बम्बई जाने की फिर से तैयारी शुरू की। १६ जून, १९१३ को मैं अजमेर गया। वहां हमारे परिवार के एक वयोवृद्ध

शुभचिन्तक[1] रहते थे। वह मेरे चाचा के गहरे मित्र थे और मेरे पिताजी तथा मुझ मे आजीवन उनकी खास दिलचस्पी रही। उनके प्रति सम्मान प्रकट करने और उनसे आशीर्वाद पाने की खातिर मै वहा गया था। तीन पीढियो से हममे घनिष्ठता चली आ रही थी। उन वयोवृद्ध सज्जन ने मुझे अनेक सत्परामर्श दिये और आशीर्वाद प्रदान किया। अब मै बम्बई रवाना होने और वहाँ फ्लैट आदि के प्रारम्भिक प्रबन्ध करने के पक्के इरादे से अपने घर अहमदाबाद के लिए रवाना हुआ।

मेरे लौटने पर मुझे एक अन्य चिन्ता और निराशा से पाला पडा। मेरे दादाजी की जाघ की हड्डी टूट गई थी और वह बिस्तर मे पडे थे। १८ जून, १९१३ को एक साइकिल-सवार ने गली मे उनको टक्कर मारी और वह गिर पडे। जान पडता है कि हमेशा की तरह वह क्लब से घर लौट रहे थे। अभी वह हमारे घर से एक या दो फर्लांग की दूरी पर होगे जबकि एक नौसिखिये बाइसिकिल-वाले के कारण उनके साथ दुर्घटना हो गई। उस समय उनकी आयु ७५ वर्ष से कुछ ऊपर थी और उनको मधुमेह का रोग था। हमारे परिवार के डाक्टर ने मुझे सलाह दी कि कम-से-कम तीन-चार मास तक उनसे दूर नही रहना चाहिए। और इस प्रकार, घर छोडकर जाने की मेरी योजना दूसरी बार स्थगित हो गई।

'नर करे और नारायण करे और' की कहावत आम प्रचलित है। ऊपर जिन दो घटनाओ का मैंने उल्लेख किया है, उनको मैंने प्रभु-इच्छा का आदेश मानकर इस प्रकार ग्रहण किया कि मुझे बम्बई मे जाकर बसने की इच्छा त्याग देनी चाहिए। वहा बसकर जन-सेवा के कार्यो में भाग लेने की मेरी अभिलापाओ को भी पूरा नही होना था। अत, मैंने अपने-आपको विभिन्न दिशाओ मे प्रवाहित युक्तियो से इस स्थिति के अनु-

---

१ स्व० दीवानबहादुर जी० आर० खाडेकर। वह अजमेर-मेरवाड़ा के असिस्टेंट जुडीशियल कमिश्नर थे। और कुछ समय के लिए भरतपुर और रियासत इदौर के प्रधान-मंत्री भी थे।

कूल बनाया और इन्ही के द्वारा अपनी योजनाओ की पराजय के फलस्वरूप व्याकुलता और निराशा पर विजय पाने मे भी मुझे पर्याप्त मदद मिली।

मैंने अपने-आपसे प्रश्न किया, 'क्या मैं अपनी चिर-अभिलाषा के अनुसार अब भी डाक्टर बन सकता हूँ ? या मैं शिक्षा-क्षेत्र मे इस आशा के साथ भौतिक शास्त्र का अधिक अध्ययन करूँ कि राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के विस्तृत कार्य मे पूरा अंशदान करने की खातिर भावी सतति को तैयार किया जा सके ?' या सर्वेन्ट्स आफ इडिया सोसायटी मे शामिल होना मेरे लिए बेहतर होगा ?' इन सब प्रश्नो का उत्तर प्रबल रूप मे 'न' था, और वह भी तब, जबकि निहायत ईमानदारी के साथ मै इन प्रश्नो के उत्तर की खोज मे था।

अपनी निजी प्रकृतियो के बावजूद यदि मै वकील बन गया, तो क्या मुझे उस दैवी इच्छा को उदारतापूर्वक ग्रहण नही कर लेना चाहिए कि जो मेरे भाग्य का ढाचा बना रही थी, और वस्तुत जिसका निर्माण भी हो रहा था ? और, यदि मैं अबतक के अपने जीवन-निर्माण पर कोई नियत्रण नही लगा सका तो मुझको महज जगह के चुनाव के बारे मे निजी दखल न होने पर क्यो शिकायत होनी चाहिए ! यह स्वीकार करना होगा कि नियति ही मेरा निर्माण कर रही थी और मेरे व्यवसाय की जगह का भी निर्णय करने जा रही थी। तदनुसार, इस सारी प्रक्रिया मे यह एक कदम आगे बढने के समान था। और मैंने सोचा कि मेरी ओर से नियति ने जिस जगह को चुना है वही सर्वोत्तम और एकमात्र मार्ग है और उसका मै बढिया-से-बढिया उपयोग करूँ।

हो सकता है कि तर्क की यह विधि कुछ विचित्र-सी जान पडे और यहा तक कि दुर्बलता की भी परिचायक हो। कुछ भी हो, यह सत्य है कि इससे अतुल असन्तोष और उसके फलस्वरूप उत्पन्न होनेवाले सघर्षो से मुझे छुटकारा मिल गया।

यद्यपि मै अधिकाधिक भाग्यवादी बनता जा रहा था तथापि अपनी ओर से ज्यादा-से-ज्यादा उद्यम करने की आवश्यकता पर मै दृढतापूर्वक

जमा रहा। और मैं पाठको को यकीन दिलाता हूँ कि इस रवैये से अपनी मानसिक स्थिति को स्थिर रखने, और किसी के भी प्रति विद्वेष या उससे मिलती-जुलती किसी भी भावना से मुक्त रहने मे मुझे काफी मदद मिली। अन्ततोगत्वा, मैं इस बात पर विश्वास करने लगा, कि यद्यपि निरन्तर श्रम करते रहना मेरा कर्तव्य या धर्म है और जो काम मुझको सौंपा गया है, उसको पूरा करने मे कुछ भी उठा नही रखना होगा तथापि जो मेरे भाग्य मे बदा नही उसे हस्तगत करने की मुझे आशा नही करनी चाहिए, और दूसरी ओर, जो मेरे भाग्य मे बदा है, उससे, विश्व की कोई भी शक्ति, मुझे वंचित नही कर सकती।

इस प्रकार के वातावरण मे मैंने अक्तूबर, १९१३ में अहमदाबाद की अदालतो मे वकालत शुरू की। मैंने एक अलग दफ्तर लिया और एक क्लर्क रखा, जो दशहरा के प्रारम्भिक दिन से लेकर १९४६ मे अपनी मृत्यु तक मेरे साथ रहा। यद्यपि मुझे अपने से बडे एक वकील के दफ्तर मे काम करने की इजाजत मिली हुई थी तथापि मेरे क्लर्क ने यह अत्यावश्यक (यह ऐसा मामला था, जिससे मैं भी पूर्णतया सहमत था) समझा कि मेरा एक अलग और स्वतत्र अस्तित्व होना चाहिए। इससे मुझमे न केवल आत्म-विश्वास की उत्पत्ति होगी प्रत्युत मुवक्किलो के विश्वास को भी मैं जीत सकूँगा। यदि एक नये पौधे को किसी बडे वृक्ष की छाया तले रोपा जाय तो उसके अविकसित-से रूप से अधिक की उससे आशा नही की जा सकती। प्रकृति मे छुटको के बारे मे जो सच है, वही दशा मानव-समाज मे भी छोटो के लिए सही है। यदि कोई नवयुवक हमेशा ही अपने किसी बडे के साथ बँधा रहे तो उसके विकास मे निश्चित तौर पर कमी रह जायगी। वह कदापि अपने आकार के मूजिब न तो उन्नत हो सकता है और न ही बढ सकता है।

तब से लेकर अब तक चालीस वर्ष बीत गये। जब मैं अपने जीवन के प्रारम्भिक काल मे मिले सुअवसरो पर नजर डालता हूँ तो अपने स्थान विषयक चुनाव के बारे मे असन्तुष्ट होने का मुझे कोई कारण नही दिखाई

पड़ता । अब तो मैं भगवान का अत्यधिक आभारी हूँ कि उसने स्नेह एव दयावश मुझे ऐसे स्थान पर जीवन आरम्भ करने का आदेश किया कि जिसके भाग्य मे इस युग की महान आत्मा के आश्रम द्वारा पवित्र होना बदा था । अहमदाबाद मे रहने के कारण ही मैं दुष्प्राप्य और जीवन के महान गौरव को प्राप्त करने योग्य हुआ। और वह था महात्मा गाधी से निजी सम्पर्क और उनके उत्साहवर्द्धक नेतृत्व मे सेवा करना ।

मैं सोचता हूँ कि १९१३ मे क्या कोई यह भविष्यवाणी कर सकता था कि आनेवाले वर्षो मे भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का समूचा आकर्षण-केन्द्र बम्बई से अहमदाबाद बदल जायगा । वस्तुत, नियति की गति नही जानी जा सकती। १९१३ मे जो आपत्तियाँ मुझ पर आई, वह न आई होती तो मैं बम्बई मे वकालत कर रहा होता। और सम्भव था कि इस, व्यवसाय मे सफलता के मुझे अपेक्षाकृत अधिक अवसर भी मिलते, किन्तु मैं उस अवसर को खो देता कि जिससे जीवन सफल हो गया ।

: ४ :

प्रारंभिक अनुभव

मैंने अभी निश्चय नही किया था कि मै दीवानी या फौजदारी अथवा दोनो मे ही वकालत करूँगा। प्रवृत्तिवश, मै फौजदारी की वकालत से सकोच करता था। मै यह सोचकर हमेशा व्याकुल हो जाता कि कही मैं अपनी निजी नौसिखिएपन की अयोग्यता से किसी निर्दोष आदमी को जेल कराने या फाँसी तक चढवाने का अजाना हेतु न वन जाऊँ। और इसलिए मै 'गरीव वकीलो की सूची मे' अपना नाम दर्ज कराने की शर्म नही उठाना चाहता था।

हत्या के अपराधी अभियुक्त के पास यदि अपनी सफाई के लिए वकील करने के साधन नही होते तो तरीका यह है कि सरकार की ओर से उसके बचाव के लिए एक वकील नियत कर दिया जाता है। उन दिनो इस प्रकार के मुकदमे छोटे इच्छुक वकीलो को दे दिये जाते थे और सरकारी लोगों ने उन्हे 'गरीव वकीलो' की उपाधि दे रखी थी। यद्यपि मेरी यह प्रवल इच्छा थी कि मुझे निजी तौर पर एक फौजदारी मुकदमे की पैरवी का अवसर मिले तथापि मैं अभियुक्त के फाँसी का दड पा जाने की भावी शका से ही भयभीत हो उठता था। फिर भी पैसे का मेरी दृष्टि मे इतना महत्व नही था, जितना ऐसे अवसर का कि जिससे मेरा कानूनी अनुभव वढे। और इतना होने पर भी मे गरीव वकील के रूप मे अपनी सेवाएँ पेश करने मे सकोच करता था। वाद मे मुझे फौजदारी के मुकदमे करने के अवसर

जरूर मिले और इनमें मुझको कैसी सफलता मिली, यह आगे के अध्यायों में देखा जा सकता है। लेकिन अपने व्यवसाय के प्रारम्भिक चरणों मे मैंने ऐसे मौको से बचे रहने की ही चेष्टा की।

इससे भी अधिक, फौजदारी अदालतों का वातावरण यह देखकर अपनी प्रतिष्ठा और आत्म-सम्मान की भावना को ठेस लगती थी कि बडे-बडे वकील तक भी सामान्य आचार-प्रदर्शन के बजाय पुलिस के साधारण जमादारों और सब-इन्स्पेक्टरो की खुशामदाना ढग मे झुक-झुक कर चाप-लूसी किया करते थे। यह सादा कार्य-व्यवहार मुझको दमनात्मक और कष्टकर जान पडता था। और इतने पर भी जैसा कि मैं कह चुका हूँ कि मैंने फौजदारी की वकालत का परित्याग करके ही शुरुआत नही की, क्योंकि मैं यथासम्भव सब प्रकार का अनुभव प्राप्त कर लेना चाहता था। इस बात की मुझे चिन्ता नही थी कि कोई मामला दीवानी का है या फौजदारी का, मैं तो अपनी भावनाओं पर नियत्रण करने की शिक्षा ग्रहण करना चाहता था।

मेरा पहला मुकदमा दीवानी का मामला था, जिसमे मैंने प्रतिवादी के खिलाफ एकतरफा रोक की आज्ञा प्राप्त की थी। मेरे से बडे वकील भी वहा मौजूद थे और उन्होंने जज साहब के सामने सारा मामला पेश करने को मुझे कहा। दोपहर बाद का वक्त था। अदालत प्राय खाली ही थी और जज साहब को भी मैं जानता था। मुझे यकीन है, इस वातावरण ने मेरी व्यग्रता को कम करने मे पर्याप्त सहायता की। आत्म-विश्वास के प्रति मेरा यह पहला कदम था, जिसमे कि मुझे पुन यकीन हो गया कि मैंने किसी गलती या त्रुटि के बिना ही अपने मामले को पेश किया।

इसके बाद का फौजदारी का मुकदमा था। यह मुकदमा द्विविवाह के इल्जाम का था और मैं मुद्दई की पैरवी कर रहा था, जो पीडित पति था। मुवक्किल मेरी फीस एकमुश्त रकम मे तय कर लेना चाहता था और इस तरह अनुमानित रकम का अन्दाज करने की कठिनाई मेरे

सामने थी । चूँकि गरीव वकीलो की फीस का स्तर दस रुपये प्रति दिन था, इसलिए मैंने सोचा कि मुझको पाँच रुपए प्रतिदिन लेने का तो हक है ही, कि जो सव जज के १५० रु० के प्रारम्भिक मासिक वेतन के हिसाव के अनुरूप ही था ।

द्विविवाह एक ऐसा अपराध है, जिसका मामला सेशन अदालत मे सुना जा सकता है । इसलिए यह ज़रूरी है कि उस अदालत मे सुनाई से पहले मजिस्ट्रेट द्वारा मामले की जाँच की जाय । दरअस्ल, मेरा खयाल था कि जाँच का काम केवल चन्द दिन का है । तिस पर भी, कमोवेश को ध्यान मे रखते हुए मैंने तीन पेशियो का अदाज़ किया, और १५ रु० की समूची फीस तय करके मुकदमा ले लिया ।

जव मामला पेश हुआ तो जाच मजिस्ट्रेट वस्तुत दूसरी शादी के वारे मे दिये गए प्रमाण से सन्तुष्ट नही था, हालाकि, वह यह मानता था कि अभियुक्त ने मुद्दई की पत्नी को वहकाया है । इससे जाँच की सूरत ही स्वभावत वदल गई, और यह मजिस्ट्रेट द्वारा सुनाई का मामला वन गया और पूरी जाच-पडताल करने के लिए लगभग वीस पेशियाँ हुई । यह वात मेरे उन अनुमानो के सर्वथा विपरीत थी कि जव मैंने १५ रुपया की फीस तय की थी ।

किसे मालूम था कि यह मामला ऐसा पेचीदा वन जायगा और काम का इतना वडा वोझ मेरे सिर आ पडेगा ? मेरा मुशी, जो मेरे यहाँ आने से पहले एक वकील का मुशी रह चुका था, वरावर इस वात पर ज़ोर दे रहा था कि मुकदमे की वदली हुई सूरत के खयाल से मुवक्किल को अतिरिक्त फीस अदा करनी चाहिए । यह एक समस्या थी, जिस पर मुझको गौर से विचार करना था । काम के वोझ के अनुमान की जिम्मेदारी नितान्त मेरी निजी थी, और मेरे मुवक्किल का इसमे कोई हिस्सा नही था । और मै ही था कि जिसने मजिस्ट्रेट की अदालत मे समूचे मामले की सुनवाई के लिए सौदा तय किया था । तो फिर अनुवध की शर्तो को छोडकर अतिरिक्त मेहनताने के लिए कहना क्या मेरे लिए न्याय-सगत था ?

इसके विपरीत, मान लो कि इस मेहनत का बोझा अनुमानित की अपेक्षा कम होता और मुवक्किल वापसी की माग करता, तो क्या मैं उसकी माग को मजूर कर लेता ? और यदि नही, तो चूँकि मुझको लाभ होगा, इसलिए मैं ही कैसे अतिरिक्त की माग कर सकता था ? मेरे और मेरे मुवक्किल के बीच अनुबन्ध की पावनता का यह प्रश्न था, और, अपने क्लर्क की अत्यधिक नैराश्य स्थिति के बावजूद भी मैंने पूर्व अनुबन्ध पर दृढ रहने का फैसला किया। जाहिरातौर पर यह मेरा नुकसान था, लेकिन ऐसा करके मैंने यह तत्काल जान लिया कि अनुबन्ध को पूरा करने का जो मार्ग मैंने अपनाया है, वह मेरे लिए एक बढिया पूँजी का नियोजन होकर रहेगा। इसका नतीजा यह हुआ कि न केवल मेरे मुवक्किल ने, बल्कि उसके पड़ो-सियों ने भी मुझको अपना विश्वस्त सलाहकार बना लिया और भक्तिभाव के साथ वे अपने अन्य मामलों मे भी मेरी सलाह लेने लगे। उसके साथ ही उन्होंने खुशी-खुशी मुझको बड़ी-बड़ी फीसे भी दीं, क्योंकि समयान्तर मेरी फीसों का स्तर भी उन्नत हो गया था।

इसी तरह बेदखली के मामलों में भी मुझको एक दिलचस्प अनुभव हुआ। बेदखली के अफसर एक डिप्टी कलक्टर थे, जो मेरे किराएदार थे। उस नाते उनके साथ मेरी मित्रता हो गई। लगभग तीन ऐसे व्यक्ति अपने मामलों की पैरवी के लिए मेरे पास आये कि जिनके मुकदमे उनकी अदालत मे चल रहे थे। मैं फौरन यह ताड गया कि मुझ सरीखे नौसिखिए वकील के पास ये लोग केवल इस वजह से आये है कि बेदखली के अफसर मेरे मित्र है और इस मित्रता के मुआवजे के तौर पर मैं उनके हक मे फैसला करा दूँगा।

इसलिए, मैंने उनमें से हर एक से यह सवाल किया कि सम्बन्धित अफसर के साथ मेरी मित्रता है और उस नाते उसका अनुचित लाभ उठाने की दृष्टि से क्या आप मेरे पास आये हैं ? बेशक, प्रत्येक का उत्तर था 'नहीं'। साथ ही कहते कि हम तो आपके नाम और ख्याति के मारे आपके पास आये हैं। (इस बात को अपनी भाषा में पेश करने का यह

एक मनोहारी ढग है।) लेकिन साफ ही था कि मै उनके इस प्रकार के दोमानी उत्तर से सन्तुष्ट नही हो सकता था। प्रत्युत्तर मे मैने उनमे से हरेक से कहा कि अपने घर जाइए और चैन से पड रहिए। यदि जचे तो कल इस शर्त पर मेरे यहाँ आइए कि आपको वकील के नाते मेरी योग्यता पर भरोसा है, न कि अफसर की दोस्ती का कि जिसके सहारे उन पर मै अपना प्रभाव जमाऊँगा।

उन सब मे से, अगले दिन, केवल एक ही आदमी मुकदमे से सम्बन्धित कागजो को लेकर मेरे पास आया। दुनिया का तरीका ही ऐसा है। उनमे से एक भी ऐसा व्यक्ति न था, जिसने पहले दिन मुझको यह यकीन न दिलाया हो कि वह मेरी सम्बन्धित अधिकारी के साथ दोस्ती का अनुचित लाभ उठाने की आशा से नही, बल्कि मेरी ख्याति के आधार पर ही आया है, जबकि मै यह भली प्रकार जानता था कि मैने उस समय तक कितनी ख्याति और नाम कमाया था।

स्पष्टत, मैने एक बार पुन विपरीत जान पडने वाले दृष्टिकोण से आती हुई माया को छोड दिया। जो भी हो, मुझको इस धारणा से बल मिला कि मेरा निर्णय नैतिक दृष्टि से ही नही बल्कि व्यावहारिक दृष्टि से भी अत्यधिक ठीक था। यह सच है कि लगभग पच्चीस मुकदमे और उनकी फीसो की मुझको हानि हुई, लेकिन मुझे यकीन है कि लौट कर न आने वाले व्यक्तियो मे से हर एक ने मुझको कम-से-कम ईमानदार तो कहा ही होगा, हालाँकि उस समय अपना मुकदमा सौपते हुए एक वकील के नाते मेरी योग्यता पर उनको शक भी हुआ होगा। लेकिन मेरा विश्वास है कि मेरे चरित्र के बारे मे उनकी राय, मेरे कानूनी जीवन के निर्माण मे अनुचित लाभ की मेरी क्षमता के अनुमान की अपेक्षा कही, अधिक बडी पूँजी थी।

: ५ :

नींव की पहली शिला

यद्यपि यह माना जा सकता है कि सफल वकील-जीवन का निर्माण अनिश्चित अंशों पर निर्भर करता है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि केवल संयोग से ही आपकी वकालत जम जायगी। आपको आवश्यक रूप से प्रतीक्षा करनी होगी, लेकिन आपका भविष्य इस पर आश्रित है कि आप अपने प्रतीक्षा काल का कितना ठोस उपयोग करते हैं और उपलब्ध अवसरों पर किस सीमा तक हावी हो सकते हैं।

यह तो निश्चित ही है कि जल्दी अथवा देरी में क्रियावान होने के अवसर मिल जाते हैं, लेकिन आपको उनका सर्वोत्तम उपयोग करने के लिए सदा तत्पर रहना होगा। आपका श्रम विशुद्ध भावों से अनुप्रेरित होने पर भी आप यह नहीं बतला सकते कि कैसे और कब आपको अपने श्रम का नतीजा हासिल हो जायगा।

अहमदाबाद में वकालत शुरू करने के छ मास बाद अक्तूबर १९१३ में मुझको एक छोटा-सा सुअवसर मिला। एक दिन मैं अदालत के वकील-प्रकोष्ठ में प्रवेश कर ही रहा था कि मेरे एक मित्र ने, जो मुझसे लगभग पांच वर्ष वरिष्ठ थे, और मुझको छात्रावस्था से जानते थे, कुशल-क्षेम के बाद मुझसे पूछा, "मावलंकर, क्यों तुम सेशन के एक इस मुकदमे की पैरवी करने को तैयार हो, जो आध घंटे में सहायक जज की अदालत में पेश होने वाला है? तुमको फीस तो नाममात्र पांच रुपये मिलेगी,

लेकिन सेशन अदालत मे पेश होने का अवसर पा लेना ही महत्वपूर्ण बात है।"

स्वभावत मुझको कुछ सकोच हुआ। यह सकोच फीस की कमी के कारण नही, बल्कि मै घबरा गया था। मै सोच रहा था कि आध घटे के अल्प काल मे मै कैसे अभियुक्त के बचाव की तैयारी करूगा, और वह भी सैशन के मुकदमे मे ?

मेरे चेहरे पर से निश्चय ही मेरी वह घबराहट जाहिर हो रही होगी, क्योकि मित्र ने आगे यह कहा, "इस बात की चिंता न करो कि तुमने मुकदमे का अध्ययन नही किया। मै और एक वरिष्ठ वकील न०२ और न० ३ अभियुक्त की ओर से पेश हो रहे है और तुमको न०१ अभियुक्त की ओर से पेश होना है। उन पर षड्यत्र द्वारा जालसाजी का यह अभियोग है कि उन्होने एक स्त्री को झूठमूठ ही किसी जाति विशेष का बताकर उसकी शादी एक व्यक्ति से कर दी और इस प्रकार धोखा देकर बदले मे उससे एक रकम ऐंठ ली। गवाहो की जिरह तथा दूसरे सब काम हम कर लेंगे। तुम्हे केवल न० १ अभियुक्त की ओर से अपना वकालत-नामा पेश करना होगा और मुकदमे की कार्यवाही को देखते रहना होगा। हम एक ऐसा वकील चाहते है कि जो न०१ अभियुक्त की ओर से पेश हो ताकि अदालत से पूछने पर वह ऐसा कोई बयान न दे, जो न० २ और न० ३ के बचाव को कोई हानि पहुचाए।"

अत, मैने उपस्थित अवसर को हस्तगत करने के खयाल से इस मामले को स्वीकार कर लिया।

जैसा कि प्राय फौजदारी मामलो मे होता है, तथ्य सीधे-सादे थे। अभियुक्त न० २ और न० ३ दोनो भाई थे और जिला कैरा के एक गाव मे रहते थे। अभियुक्त न० १ उनका ममेरा भाई था, जो पास के एक गाव मे रहता था। न० २ और न० ३ अभियुक्तो ने एक लडकी को पाटीदार (एक जाति विशेष) बताकर उसी जाति के एक अधेड उम्र के व्यक्ति के साथ उसके विवाह की योजना बनाई। उस अधेड़ व्यक्ति को

अपना विवाह करने मे बडी कठिनाई का सामना करना पड रहा था। क्योंकि एक तो उसको अपनी जाति मे विवाह योग्य लडकियो की कमी थी, और दूसरे उसकी आयु भी कुछ ज्यादा ही थी। वे बदले मे उससे करीब एक हजार रुपये ऐठने मे कामयाब रहे। निश्चित समय पर यह विवाह हुआ, किन्तु दुल्हिन उसके घर मे थोडे ही दिन रही और फिर उसको छोडकर चली गई।

पति द्वारा शुरू की गई जाच मे पता चला कि स्त्री पाटीदार जाति की न हो कर कुम्हार जाति की थी, जो सामाजिक परपरा मे बहुत ही छोटी जात मानी जाती है। इससे उसको बडा आघात लगा और उसने महसूस किया कि उसे धोखा दिया गया है। फलत उसने धोखादेही के अपराध मे न० २ और न० ३ अभियुक्तो के खिलाफ फौजदारी मुकदमा दायर कर दिया। अभियुक्त न० १ सौदा पटाने के वक्त अभियुक्त न०२ और न० ३ के साथ मुद्दई के मकान पर गया था। उसने न तो इस मामले मे कोई सक्रिय भाग लिया था, और न ही प्रतिलाभ भी। एक हजार की रकम मे से उसे कोई अश नही मिला था।

यह मुकदमा एक सजग गुजराती युवक जज के सामने पेश हुआ, जो जिला खेरा का रहनेवाला था। फलस्वरूप, वह मुकदमे से सबधित जाति के लोगो की भाषा और स्थानीय समाज के रीति-रिवाजो से पूर्णतया परिचित था। अदालत मे मेरे दाखिल होने से पहले ही कार्रवाई शुरू हो चुकी थी। मैने अभियुक्त की ओर से वकालतनामा पेश किया। इस्तगासे का वकील मुकदमे का प्रारम्भिक वक्तव्य दे चुका था और पहले गवाह (मुद्दई) का बयान हो रहा था। चूकि मै अभियुक्त न० १ की पैरवी कर रहा था, इसलिए गवाह से सब से प्रथम मुझको ही जिरह करनी थी। सो, जब मुद्दई के बयान हो चुके तो जज ने मुझ को उससे सवाल-जवाब करने को कहा।

फलत मैने जज से इस प्रकार निवेदन किया :

'श्रीमान्, कुछ ही क्षण पूर्व इस मामले को हाथ मे लेने के कारण मै

उसके तथ्यो और मिसिल से पूरी तरह वाकिफ होने के लिए थोडा समय चाहता हू । इसलिए अभियुक्त न० २ और ३ के वकीलो के बाद इस गवाह से जिरह करने की इजाजत दी जाय।" इस बात को नजर मे रखते हुए कि मैं अभी नया वकील हू और मुकदमे के तथ्यो से भी अभी अपरिचित हू, जज ने मेरी प्रार्थना स्वीकार कर ली । मेरा खयाल है कि जज ने यह भी भाप लिया कि अभियुक्त न० २ और न० ३ के वकीलो के कहने पर ही मुझे नियुक्त किया गया है ।

जितने समय मे अभियुक्त न० २ और न० ३ के वकीलो ने मुद्दई (पहला गवाह) के साथ जिरह समाप्त की, उसी बीच मैंने तथ्यो का अध्ययन करके अभियुक्त न० १ के बचाव के लिए जिरह का रास्ता तय कर लिया । केवल मात्र एक ही सभव और तर्कसगत मार्ग था कि जिसके अनुसार यह दर्शाया जाय कि अभियुक्त न० १ अपने फुफेरे भाइयो के साथ गया जरूर था, लेकिन सौदा पटाने और बातचीत मे उसने कोई सक्रिय भाग नही लिया था ।

हो सकता है कि जहा पर कुछ आदमी अपने किसी कारोबार की बाते कर रहे हो वहा पर किसी अन्य की मौजूदगी के आधार पर ही उस पर आरोप लगाया जा सके। परिणामत , मैंने गवाह के साथ बहुत थोडी जिरह की । जिन गवाहो ने अभियुक्ति न० १ की मौजूदगी का उल्लेख नही किया था, उनसे मैंने कोई सवाल नही पूछा । और जिन्होने उल्लेख किया था, उनसे सीधे प्रश्न केवल यही किये कि अभियुक्त न० १ ने बात-बीच मे हिस्सा लिया था कि नही, और यदि हाँ तो उसने क्या हिस्सा अदा किया था ।

दो दिन तक मुकदमे की सुनवाई होती रही । क्योकि सेशन के मामले मे यह मेरी पहले-पहल की पेशी थी और जज तथा असैसरो के समक्ष वक्तव्य देने का भी सर्वप्रथम अवसर था, इसलिए पहले दिन भी कार्रवाई की समाप्ति पर घर आकर मैंने गवाही के बारे मे पूरे नुक्ते तैयार किये । साथ ही मैंने अपने मुवक्किल के बचाव के लिए मुकदमे के सारे नुक्तो

पर नजर डाली और उन्हे पेश करने के प्रकार और अनुक्रम पर भी विचार किया ।

क्योंकि उन इलाको में उस मुकद्दमे से सनसनी पैदा हो गई थी कि जिनमे मुद्दई और मुद्दायले रहते थे, इसलिए उन जगहो के लोगो से अदालत का कमरा ठसाठस भर गया था। जज और असैसरो के सामने पहले मुझे ही अपना वक्तव्य देना था और करीब पाच बजे मैंने अपना वक्तव्य आरम्भ किया । लगभग पैंतालीस मिनट तक मै बोला । मै अदालत मे गुजराती में इसलिए बोला कि असैसर अगरेजी नही जानते थे । यह बात पूर्णतया मेरे अनुकूल पडी, क्योंकि समग्र रूप मे दर्शक मुकदमे की पूरी कार्रवाई समझने और मेरे द्वारा प्रस्तुत तर्कों की सराहना करने मे समर्थ रहे ।

इससे वहा का वातावरण कुछ इस ढग का बन गया । मुझ सरीखे कल के नौसिखिए वकील ने जब अपने मामले पर बहस करने मे लगभग ४५ मिनट लगाए, तब दोनो वरिष्ठ वकीलो ने महसूस किया कि ज्यादा नही तो कम-से-कम उतने समय तक तो उन्हें भी बहस करनी ही चाहिए । क्योंकि मेरी बारी पहले थी, स्वभावत ही मुझे सारी गवाही पर यानी मुकद्दमे के सभी पहलुओं पर बहस करनी थी, और अतत आवश्यकतानुसार अभियुक्त न० १ के मामले का उल्लेख करना था। इसलिए सामान्यतौर पर, जहा तक सारे मुकदमे का सबध था, मुश्किल से ही मैंने कोई ऐसा तर्क छोडा, जिसे वरिष्ठ वकील पक्ष अथवा विरोध मे पेश कर सकते । ऐसी स्थिति मे जो वे कर सकते थे, और जो उन्हे करना चाहिए था, बस इतना ही कि प्रत्येक दस मिनट मे जो कुछ कहना हो, कह दे ।

लेकिन हुआ यह कि वे दर्शको पर अपना प्रभाव जमाने के विचार मे बह गए और वे उन्ही बातो को दोहराने लगे कि जिन्हे मै कह चुका था । जज ने उकता जाने के बावजूद कुछ देर तक धीरज से उनकी बात सुनी, लेकिन जब उसने व्यर्थ ही बहस को लबा खीचने की प्रवृत्ति देखी तो वह कुछ-कुछ चिढ और उत्तेजना के साथ उन्हें बार-बार टोकने लगा ।

"वह सब तो श्री मावलंकर पहले ही कह चुके है। क्या आपको कोई और नई बात कहनी है ?' कभी-कभी उसने बुरी तरह उनकी नुक्ताचीनी की, "आप जनता का समय नष्ट कर रहे हैं।" इस घटना का नतीजा यह हुआ कि दर्शकों का मन स्वतः ही इससे प्रभावित हो गया। हालांकि उस समय इस विषय मे मेरा कोई निश्चित विचार नही था।

दिनात में काफी सध्या हो जाने पर, जज ने असेसरों की राय पूछी, और उन्होंने एलान किया कि अभियुक्त न० १ "दोषी नही" और न०२ तथा न० ३ "दोषी"। इधर जज अपने मतानुसार उनसे असहमत था और उसने तीनो को "दोषी" करार दिया। उसने अभियुक्त न० २ और न० ३ को एक-एक वर्ष तथा न० १ को ६ मास की कडी कैद का दड दिया।

इस तरह वह मुकदमा समाप्त हुआ, और मै उस विषय मे सब कुछ भूल गया। तब अचानक, लगभग दो बरस बाद जिला कैरा का एक ग्रामीण मेरे दफ्तर मे आया, जिसने अपने बगल मे कुछ कागज दबा रखे थे। उसने मुसकराहट भरी नजर से मेरी ओर देखा और अगुली का इशारा करते हुए बोला, "आखिर मैंने आपको खोज ही लिया। उस दिन आपने दरअसल ही कमाल कर दिखाया। अगर दोनों वकीलों ने अपनी खींचतान से जज को परेशान न किया होता, तो मुझे विश्वास है, अभियुक्त न० १ बरी हो जाता।"

पहले तो मैं समझा नहीं कि वह कह क्या रहा है। मैंने प्रश्न किया कि 'मुझे खोज ही लिया," और जिस मुकदमे का उसने जिक्र किया है, उससे उसका क्या अभिप्राय है ? तब उसने मुझे उपर्युक्त मुकदमे की याद दिलाई और बताया कि मुकदमे की सुनवाई के दोनों दिन मैं वहां मौजूद था। तत्काल ही उसने मुझे एक अच्छा वकील मान लिया था। लेकिन मेरा नाम और पता नहीं जानता था। अतः, जब एक दीवानी मामले के लिए वकील करने का मौका आया तो उसने अहमदाबाद में जगह-जगह उस युवक वकील की पहचान बता-बता

कर पडताल की, जिससे वह इतना ज्यादा प्रभावित हुआ था, और इस प्रकार उसने "अतत." मुझे खोज ही लिया था।

इस व्यक्ति को एक दीवानी मामले मे अपील करनी थी, जिसका सबध उसके तथा उसके चचेरे भाइयो के बीच पारिवारिक सपत्ति के विभाजन से था। मैं तत्सबधी कानूनी नुक्तो अथवा तथ्यों के बारे मे यहा विस्तार से कुछ भी कहना आवश्यक नही समझता। उसने इस बारे मे आखिरी निर्णय का भार मुझ पर छोड दिया कि अपील करना लाभदायक है या नही। मैंने नीचे की अदालत का फैसला पढा और अपील करने की सलाह दी।

अपील की सुनवाई हुई और विरोधी पक्ष ने एक नामी-गिरामी बडे वकील को किया, जिसकी ख्याति भी बहुत थी और वकालत भी। स्वभावत अहमदाबाद के एक बहुत बडे वकील के मुकाबिले मे खडे होने के कारण मैं काफी घबराहट महसूस करने लगा। लेकिन जान पडता था कि मेरे मुवक्किल का मुझ पर उससे कही अधिक विश्वास था जितना कि मैं खुद अपने पर करता था। इसलिए उसने कहा कि उसे मुझ पर पूरा-पूरा भरोसा है और अपील की बहस के लिए किसी वरिष्ठ वकील को करने की कतई जरूरत नही।

इस अपील की सुनवाई एक बहुत बडे जिला जज के सामने हुई, जो अगरेज थे। हम अपील जीत गए और हाईकोर्ट ने इस निर्णय की पुष्टि की। सपत्ति-विभाजन के हिन्दू कानून विषयक एक पेचीदे प्रश्न का यह महत्वपूर्ण निर्णय था और इडियन लॉ रिपोर्टर्स (बाम्बे सीरीज) मे इसका उल्लेख हुआ है।

इस अपील की जीत के कारण जिला कैरा के कई दूसरे मुकदमे मुझे मिले। इससे मुझे वकील के रूप मे प्रतिष्ठित होने मे बडी मदद मिली और उस इलाके से वकालत का काफी काम मिलने लगा।

: ६ :

फौजदारी मुकदमे न लेने का निर्णय

एक फौजदारी मुकदमे मे मुझे अत्यन्त कटु अनुभव हुआ, जिसने मुझे सदा के लिए छोटी फौजदारी अदालतो मे पेश होने से रोक दिया। वास्तव में वहां की परिस्थिति मेरी नैतिक चेतना के लिए इतनी असह्य थी कि मैंने निश्चय किया कि मैं वकालत की इस दिशा से आइंदा कोई सरोकार नही रखूगा और इन अदालतो मे तो हर्गिज जाने का नाम नही लूगा।

मैं यह अनुभव करने लगा कि मैं सर्वत्र फैले हुए झूठ, मिथ्याचार छल-प्रपच आदि की तह तक पहुचने के अयोग्य हू, इसलिए मैंने फौजदारी वकालत के लाभदायक और उज्ज्वल भविष्य के आकर्षण के बजाय बिना मुवक्किल का वकील रहना ही पसद किया। मेरे इस निर्णय से मुझे पर्याप्त सतोष और मानसिक शाति हासिल हुई। इन्ही कारणो से, वस्तुत: मेरी फौजदारी की वकालत बहुत अच्छी नही थी, लेकिन जिस एक मुकदमे की उदात्तता ने मेरे निश्चय को प्रभावित किया, उसका विवरण यह है :—

एक मिल के एक खास हिस्से मे मजदूरो के दो विरोधी दलो में किसी बात पर लडाई हो गई और उनमें खूब लाठिया चली। काफी लोगो ने इस फिसाद मे हिस्सा लिया था, और यह भी स्पष्ट था कि दोनो दलो मे ५-५ से ज्यादा व्यक्ति थे। पुलिस ने हस्तक्षेप किया और प्रत्येक

दल के प्रमुख सदस्यो के विरुद्ध गैरकानूनी मजमा इकट्ठा करने तथा दगा-फिसाद करने के अपराध मे अभियोग चलाया गया। इसके अलावा, दोनो दलो ने एक-दूसरे के खिलाफ आरोप लगाए और इस प्रकार प्रत्येक दल एक अभियोग मे अभियोगी था तो दूसरे मे अभियुक्त। सरकार की ओर से पुलिस के अभियोक्ता ने मुकदमा चलाया था।

यह निश्चित था कि दोनो दलो मे लडाई हुई और दोनो ओर के लोग घायल हुए थे। फिर भी जो बात स्पष्ट रूप से मेरी समझ मे नही आ रही थी, वह यह थी कि मै किन आधारो को लेकर अपने मुवक्किलों के बचाव का मामला तैयार करू। हालांकि, मेरे मुवक्किलो ने जो आरोप लगाया था, वह तथ्यो पर आधारित था और न्यायोचित भी। पर यह नही कहा जा सकता था कि मेरे मुवक्किलो ने जो-कुछ किया, वह आक्रमण के विरुद्ध केवल आत्म-रक्षा के लिए ही था। दोनो ही दल समान रूप से आक्रमणकारी थे और दोनो ने ही आत्म-रक्षा की उचित सीमाओं का उल्लघन किया था। इसलिए, मेरे खयाल से, दोनो दलो के लिए सर्वोत्तम उपाय यह था कि वे अपने-अपने अपराध को मजूर कर ले। और साथ ही अदालत मे उन परिस्थितियो का भी स्पष्टीकरण कर दे, जिनने उनकी भावनाओं को भडका कर अतत उन्हे आपस मे लडा दिया था। अनन्तर अदालत के निर्णय पर भरोसा करे और कम-से-कम सजा देने की प्रार्थना करे।

यद्यपि मेरे मुवक्किलो ने मेरे इस दृष्टिकोण की सराहना तो की, तथापि वे मेरी इस सलाह को मानने के लिए तैयार नही थे। उन्हें इस बात का भय था कि अपने को दोषी मान लेने पर विरोधी दल उन्हे अभियुक्त साबित करके अपने बचाव के बल पर कही अपने को निर्दोष न सिद्ध कर ले। यद्यपि मेरे मुवक्किलो का किसी भी तरह बचाव सम्भव नही था फिर भी जबतक उनका विरोधी दल अपने को दोषी मानने के लिए तैयार नही था तबतक वे भी वैसा नही करना चाहते थे।

अपने मुवक्किलो के हित-साधन के लिए मुझे इसके अतिरिक्त कोई अन्य मार्ग सूझ ही नहीं रहा था। वास्तव मे जो कुछ उन्होंने किया था

उसका कोई मजबूत कानूनी बचाव ढूंढने में मैं असमर्थ था। मैं यह तो नही कह सकता कि मेरे इस एकाकी और असाधारण व्यवहार ने मुवक्किलो पर क्या असर डाला लेकिन मुकदमा समाप्त होने पर उनके व्यवहार को देखते हुए मुझे ऐसा लगा कि उनका मेरे प्रति स्नेहपूर्ण आदर है।

मुकदमा प्रारभ होने के अतिम क्षण तक मैं यह निश्चय नही कर पाया कि कैसे इनकी पैरवी करू। अतत, मैंने तुरत ही आत्म-रक्षा के तर्क का सहारा लेने और उसी के अनुसार गवाहो से जिरह करने का निर्णय किया। सौभाग्य से पहले उस मुकदमे की सुनवाई हुई जिसमे मेरे मुवक्किल मुद्दई थे। इसलिए मुझे यह जाचने का पर्याप्त अवसर मिल गया कि विरोधी दल अपने बचाव के लिए किन तर्कों का सहारा लेता है।

पेशी के दिन जब विरोधी पक्ष के विद्वान एव वरिष्ठ वकील ने मुझे यह सूचित किया कि दोनो पक्षो ने आपसी समझौते से राजीनामा कर लिया है तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरी पहली प्रतिक्रिया तो इसके अनुकूल हुई, क्योंकि मेरा विचार था कि दोनो पक्षो ने अपने को दोषी मान कर ही ऐसा किया है। किंतु जब मैंने समझौते के बारे में अधिक जाच की तो उन्ही वरिष्ठ वकील ने बताया कि प्रत्येक पक्ष एक दूसरे को बरी करने के लिए राजी है।

मेरी समझ मे यह आ ही नहीं रहा था कि इसका मतलब क्या है, यह सभव कैसे है, यह चक्कर क्या है जब कि मामला न्यायालय के समक्ष है। मैं यह समझने मे असमर्थ था कि जब अभियोग सरकार की ओर से लगाया गया है तो उस स्थिति मे एक अथवा दोनो पक्ष उस पर कैसे नियत्रण रख सकते है। सब सभावित विकल्प तथा जाब्ता फौजदारी (क्रिमिनल प्रोसीजर कोड) की सबधित विभिन्न धारा-उपधाराए मेरे मस्तिष्क मे तेजी से चक्कर काट रही थी। लेकिन उन धाराओ के अतर्गत यह समझौता हो सकना सभव नही था। अत मैं क्षण भर के लिए मैं हतप्रभ हो गया और स्वय से ही पूछने लगा कि इतनी जल्दी मैं कानूनी बात को भूल कैसे गया! नि सदेह, मैंने जब एक वरिष्ठ वकील का यह कथन स्वीकार कर लिया था कि समझौता हो गया है तो अवश्य ही कानूनीतौर पर वैसा हो सकना सभव होगा। मैंने

उस वक्त यह कल्पना तक नही की थी कि किसी प्रकार की नैतिकता का प्रश्न भी समुपस्थित हो जायगा ।

जब मैं बहुत विचलित हुआ तो वरिष्ठ वकील से यह पूछने गया कि कैसे, और जाब्ता फौजदारी की किस धारा के अंतर्गत ऐसे मुकदमो मे समझौता हो सकता है। यह सुनकर वह थोडा मुस्कराए। इस मुस्कान मे विनोद और तिरस्कार दोनो की यह भावना थी कि मै ससार के व्यवहारो से कितना अपरिचित हू। उन्होंने मुझे घूरते हुए पूछा, "क्या मै यह जान सकता हू कि ऐसे मुकदमो मे समझौता क्यो संभव नही है ?"

मैने उत्तर दिया, "लेकिन कैसे, और किस धारा के अतर्गत ?"

वे बोले, "भोले नौजवान, क्या आपको पता नही कि अभी तक कोई गवाही नही हुई है। जबतक यह साबित नही हो जाता कि दोनो पक्षो के पांच-पांच व्यक्ति एक स्थान पर मौजूद थे, तबतक गैरकानूनी मजमे का सवाल ही नही उठता, फिर दंगा-फसाद तो बहुत दूर की बात है।"

मैंने कहा, "बिलकुल ठीक, लेकिन वहा तो पाच से भी अधिक व्यक्ति थे।"

"लेकिन तुम यह क्यो नही समझते," उन्होने अपनी बात को जारी रखते हुए कहा, "कि अदालत के पास ऐसा कोई सबूत नही है जिससे वह यह सिद्ध कर सके कि वहा पाच से अधिक व्यक्ति मौजूद थे। यह ठीक है कि मैं और आप जानते है कि वास्तव मे मामला ऐसा नही है। किंतु अब तो प्रत्येक गवाह को केवल यह कहने की जरूरत है कि वहा पर महज दो-तीन ही व्यक्ति थे।"

मैं स्वीकार करता हू कि इससे मुझे बडा धक्का लगा, क्योकि मै ये सब अपने हमपेशा एक वरिष्ठ वकील से सुन रहा था। मेरे यह पूछने पर कि, "जो सच्चाई नही है, उसे गवाह कैसे कहेंगे ?" उनका निष्ठुर उत्तर था, "चाहे सत्य हो अथवा झूठ, उन्हे यही कहना पड़ेगा।" यह सुन कर जैसे मैं एक साथ ही गूगा और बहरा हो गया। मै हक्का-बक्का-सा यह समझ ही नही पा रहा था कि क्या करू।

मुझे परेशान देखकर उन वयोवृद्ध सज्जन ने कहा कि मैं अपने गवाहो को उनके सुझाव के अनुसार ही निर्देश दू। यह मेरी सहनशीलता की सीमा के

वाहर था। मैने न केवल ऐसा कुछ करने से साफ-साफ इकार ही किया वरन स्वय को इस मुकदमे से हटा लेने के लिए भी कहा। इस सारे गदे मामले को अन्य कोई वकील, जिसे मेरे मुवक्किल चाहे, अपने हाथ मे ले ले। लेकिन यह तव सभव नही था क्योकि कुछ ही मिनटो मे मुकदमे की सुनवाई शुरू होनेवाली थी। मै बडे असमजस मे था कि अब करू तो क्या !

मैने उक्त सज्जन से कहा कि यदि इस समय अपने को इस मुकदमे से हटाना सभव नही है तो फिर मै दोनो मुकदमो को कानूनीतौर पर चलाने का भार आप पर छोडता हू। अत , मेरे व्यवहार को देखते हुए वकील महोदय ने मेरे गवाहो को सिखाने-पढाने का भी भार अपने ही ऊपर ले लिया।

आवाज लगने पर हम दोनो साथ-साथ अदालत मे घुसे। मेरा मन अपनी दोषी अंतरात्मा के कारण भारी था, जो मुझे अपनी कमजोरी के कारण इतना बडा अनैतिक काम करने के लिए धिक्कार रही थी। यद्यपि मै मुकदमे की पैरवी करने से इकार कर चुका था, फिर भी मै स्वय को इस प्रकार दोषी अनुभव कर रहा था जैसे मैने ही झूठी गवाही देने का प्रोत्साहन दिया हो। मुकदमे के सवध मे मेरी निष्क्रियता भी मेरी चेतना को सतुष्ट करने मे असफल थी। यद्यपि मै स्थूल रूप मे न्यायालय मे उपस्थित था, तथापि मानसिक शाति नाम की कोई चीज मेरे अदर नही रह गई थी। यहा तक कि मुझे यह भी पता नही था कि यहा हो क्या रहा है ! मै स्वय अपने व्यवहार पर क्षुब्ध था कि मै पूर्णरूपेण स्वय को इस मुकदमे से हटाने की बजाय यहा न्यायालय मे एक खामोश दर्शक की तरह क्यो वैठा हू !

इस दुखात नाटक का चरमोत्कर्ष होना अभी शेप था। वे भोले-भाले ग्रामीण किस्म के गवाह झूठ वोलने की कला मे अभी इतने दक्ष नही थे। उन्हे वह वात कहने का निर्देश दिया गया था जो सत्य नही थी, लेकिन उसे इस चतुराई से कहना था जैसे वह सत्य हो। अत , पहला व्यक्ति, जो गवाही देने के लिए कटघरे मे आकर खडा हुआ, घवराया हुआ था। वह प्रत्येक प्रश्न के उतर के लिए निर्देश पानेको अपनी शून्य दृष्टि से वकील साहवकी ओर देखता।

न्यायालय वहुत वडा नही था। वास्तव मे एक छोटे-से कमरे को ही अदा-

लत का रूप दे दिया गया था। गवाह बिलकुल हमारे पास ही खड़ा था। मजिस्ट्रेट अपने कागजों को देखने में व्यस्त था और वरिष्ठ वकील, सरकारी वकील तथा मैं गवाह के पास ही एक पंक्ति में कुर्सियों पर बैठे हुए थे। गवाह की प्रत्येक शून्य दृष्टि पर वरिष्ठ वकील वांछित उत्तर के लिए या तो अपने सिर को हिलाते अथवा अपनी उंगलियों से इशारा कर देते थे।

सौभाग्य से सरकारी वकील ने यह सब-कुछ देख लिया और एकदम उठकर मजिस्ट्रेट से शिकायत की, "श्रीमान, वकील साहब गवाह को इशारे कर रहे हैं।" इन पर वरिष्ठ वकील महोदय एकदम बिगड़ उठे और इस नाटकीय ढंग से क्रोध करने लगे कि जैसे वास्तविक अपराधी पुलिस के प्रतिनिधि ने उनकी भलमनसाहत, निर्दोषिता और सम्मान पर आक्रमण किया है। उन्होंने पूरी प्रचण्डता के साथ सरकारी वकील द्वारा लगाए गए अभियोग का विरोध किया और वर्षों से वकालत करने तथा एक वरिष्ठ वकील होने के नाते अपने चरित्र की शुद्धता, सच्चरित्रता एवं सम्मान की दुहाई दी। 'यह सब कैसे हो सकता है? मैं तो ऐसे नीचतापूर्ण व्यवहार की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता।' ऐसी ही कुछ बातें उन्होंने बड़े विस्तार से कहीं। जो अभियोग उन पर लगाया गया था वह सरासर झूठ था। और सरकारी वकील की उर्वर कल्पना ने गढ़ा था, और वह भी सिर्फ इसलिए कि गवाह इस वक्त जो-कुछ कह रहा है वह पुलिस के समक्ष दिये हुए वक्तव्य से मेल नहीं खाता। उन्होंने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा कि पुलिस गवाहों से जबरदस्ती झूठे बयान लिखवाने के लिए कुख्यात है। और चूंकि इस समय गवाह न्यायालय के स्वतन्त्र वातावरण में सच बोल रहा है, इसलिए सरकारी वकील महोदय बिगड़ उठे हैं और उन पर झूठे अभियोग लगा रहे हैं।

चूंकि मजिस्ट्रेट अभी नया ही था, अतः बड़ी दुविधा में पड़ गया कि वह और किस पर विश्वास करे, और किस पर नहीं। तब उसने यह कह कर कि, "मैं गवाह के बयान लेने में व्यस्त था इसलिए मेरी आंखें अपने सामने के कागजों में ही उलझी हुई थीं, अतः मैं विद्वान सरकारी वकील द्वारा लगाए गए अभियोग में जो बातें कही गयी हैं, उन्हें नहीं देख सका।" इस तरह उसने

न तो लगाए गये अभियोग को स्वीकार ही किया और न ही अस्वीकार।

इस पर सरकारी वकील ने मेरी ओर सकेत करते हुए निवेदन किया, "न्यायालय हमारे पास बैठे इन सज्जन से पूछ सकता है।" जैसे ही मजिस्ट्रेट ने मेरी ओर प्रश्न भरी दृष्टि फेरी कि मैने क्या देखा है, मैने सदिग्ध रुख अपनाया, जिसे मै स्वीकार करता हू कि वह विलकुल गलत था। मैने न तो स्पष्ट सत्य ही कहा और न विलकुल झूठ ही बोला। जहा तक मुझे स्मरण है मैने कहा था, "मै भी नोट लेने मे व्यस्त था।" यह अर्ध-सत्य था। क्योकि वास्तव मे मै नोट्स लेने मे लगा हुआ था, लेकिन साथ ही मैने वरिष्ठ वकील महोदय के अनुचित आचरण को भी देखा था। परतु उनका पर्दाफाश करने का मै साहस नही जुटा पाया था। मैने अपने अतरात्मा को यह कह कर सतुष्ट किया कि यद्यपि मुझे सरकारी वकील के पक्ष मे जो कहना चाहिए था, वह मैने नही कहा, तथापि मैने खुले शब्दो मे विरोध भी नही किया था।

इस के वावजूद मै अपनी इस आत्मिक दुर्बलता से अत्यत खिन्न था। इसलिए मैने उसी क्षण यह प्रतिज्ञा की कि यदि फौजदारी मुकदमो में इसी प्रकार का अपमान सहन करना पडता है तो फिर मै भविष्य मे उनके साथ अपना कोई सवध नहीं रखूगा। फौजदारी अदालत मे पैरवी करने के वजाय मैं विना मुवक्किल का रहना कही अधिक अच्छा समझूगा। मेरे इस प्रकार के निर्णय ने मुझे पर्याप्त मात्रा मे मानसिक शाति प्रदान की और मै दूसरे दिन से उस मुकदमे की पैरवी करने के लिए नही गया।

फौजदारी मुकदमो मे पैरवी करने के विचार का मेरे लिए यह अत था। भविष्य मे मै फैक्ट्री एक्ट या धूम्रपान निरोध अधिनियम आदि सबधी फौजदारी मुकदमो की पैरवी करता रहा, लेकिन ये या तो कानून-भग सवधी थे, जिनका नैतिक गिरावट से कोई सवंध नही था, अथवा वे ऐसे मुकदमे थे, जिनका ऊची अदालतो से ही सवध था। और जव मै ऐसे मुकदमो की पैरवी फिर करने लगा तो उस समय तक मै अपना एक स्तर बना चुका था, जो इन गिरावटो से ऊपर था और जिनसे मुझे अपनी वकालत के प्रारंभिक काल मे घृणा हो गई थी।

: ७ :

धैर्य की परीक्षा

अब जो मैं कहने जा रहा हू यह उस समय की, या उससे चद माह बाद की बात है जब मैंने अहमदाबाद मे अपना दफ्तर खोला ही था। छोटी अदालत में लगभग पाच सौ रुपये के प्रोनोट का एक छोटा-सा मामला था। मैं वादी की ओर से पैरवी कर रहा था। प्रोनोट की जाच-पडताल करने पर मुझे वह बिलकुल सही जचा। उस पर टिकट भी वाजिब ही लगी हुई थी। इसलिए मुझे अपने मुवक्किल की सच्चाई और न्यायपरता पर सदेह की तनिक भी गुजाइश नही थी।

मेरे मुकाबिले मे एक वरिष्ठ वकील थे, जिन्होने तीन पृष्ठो का लबा लिखित वक्तव्य पेश किया था। इस वक्तव्य मे उन्होने प्रोनोट लिखने की बात तो मानी थी, पर साथ ही यह भी कहा था कि यह प्रोनोट धोखे से, और जबरन, लिखाया गया है। दूसरी सूरत उन्होने यह पेश की थी कि आशिक भुगतान भी किया जा चुका है। यह देख कर कि किस तरह इन सारी बातो को जोड़ा गया है, मै कतई परेशान नही हुआ।

यह मुकदमा मेरी सहनशीलता की बडी कडी परीक्षा थी। क्योंकि मुकदमा शुरू होने के तत्काल बाद जो-कुछ हुआ उसके कारण लगभग पन्द्रह मिनट तक मैं किंकर्तव्यविमूढ बना रह गया। अभी हाल ही मैंने कानून की डिग्री हासिल की थी। मैंने मन-ही-मन सोचा कि मेरा एवी-

इंस एक्ट (गवाही का कानून) का ज्ञान उतना ही ताजा, सही और सच्चा है कि जितना मै खुद हू ।

इसलिए मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि मेरे विरोधी वरिष्ठ वकील जिरह के बल पर जी-जान से यह कोशिश कर रहे थे कि मुद्दई पहले गवाही भुगताए, और न केवल यह साबित करे कि प्रोनोट रुपए देने पर ही लिखाया गया है बल्कि प्रतिवादी के कथनानुसार यह भी साबित करे कि प्रोनोट लिखने मे धोखा अथवा जबरदस्ती नही बरती गई ।

पर मेरी कानूनी धारणा यह थी कि जब प्रतिवादी (मुद्दालय) ने प्रोनोट को स्वीकार कर लिया है, तब जबरदस्ती, धोखा-धडी और आशिक भुगतान को साबित करने की जिम्मेदारी उसी पर है । लेकिन वरिष्ठ वकील ने जिस गभीरता से अपने तर्क उपस्थित किये उन्हे सुन कर एक बार तो मै स्तभित-सा रह गया । इस नुक्ते के बारे मे क्या कानून स्पष्ट नही है, और मेरा खयाल था कि है, तो फिर एक वरिष्ठ वकील गभीरतापूर्वक कैसे उसके खिलाफ अपने तर्क उपस्थित कर सकते है ? यह देख कर कि वरिष्ठ वकील अपने पक्ष की पुष्टि मे प्रबलतापूर्वक अपने तर्क उपस्थित कर रहे है और अदालत भी धीरज के साथ उन्हे सुन रही है, मुझे लगा कि कही मैने उस कानून को समझने मे भूल तो नही की । अपने वकालती जीवन के उस आरभिक काल मे मै यह भली प्रकार नही समझ सका कि इतने विपरीत ढग से ये नुक्ते उठाए जा सकते है और अदालत उन पर बहस की भी इजाजत दे सकती है !

अदालत से अपना व्यक्तिगत निवेदन करने के लिए मैने उठने की कोशिश की । यद्यपि जज बहुत अनुभवी, दयालु और सहानुभूतिपूर्ण सज्जन थे, तथापि उन्होने हाथ का इशारा करते हुए मराठी भाषा मे मुझे अपनी जगह पर बैठ रहने को कहा । इस सकेत से मै हक्का-बक्का रह गया । यह नुक्ता इतना स्पष्ट था कि मै यह ठीक से नही जान सका कि जबतक अदालत इस प्रश्न को विवादग्रस्त स्थिर नही करती,

क्यों वह मुझे जवाब देने की मनाही करे और उस स्तर पर उन्होंने मुझे हस्तक्षेप क्यों नहीं करने दिया ? विद्वान वरिष्ठ वकील ने १५ से २० मिनट तक बहस की । इस बीच मैं डावाडोल स्थिति में सोचता रहा कि जो-कुछ मैंने पढ़ा है उसे भूल गया हू अथवा मैंने पढ़ा ही गलत था। सच तो यह है कि वह समय मेरे धैर्य की परीक्षा का था।

जब वरिष्ठ वकील अपनी जिरह खत्म कर चुके तब उत्तर देने के लिए मैंने पुन उठने की चेष्टा की, पर मजिस्ट्रेट ने मुझे फिर-से बैठ रहने का इशारा किया । जैसा कि मैं इस समय भी महसूस कर सकता हू, यह मेरी उत्तेजना की चरम सीमा थी। अगले ही क्षण यह सारी उत्तेजनापूर्ण स्थिति शात हो गई, जब कि अदालत ने कहा कि वरिष्ठ वकील के तर्कों को रद्द किया जाता है और सबूत देने का भार मुद्दालय (प्रतिवादी) पर है । अदालत के फैसले ने जादू की छडी-सा काम किया। इससे मुझ मे पुन आत्म-विश्वास जागृत हुआ और पर्याप्त मात्रा में मुझ मे साहस उत्पन्न हो गया। साथ-ही-साथ यह देख कर मुझे दुख हुआ कि वकील इतने स्पष्ट और तर्क-रहित नुक्ते पर बहस करते और जनता का समय नष्ट करते है। मैंने मन-ही-मन प्रार्थना की कि भगवान करे मै वरिष्ठ वकील बनने पर ऐसे दोषो का अपराधी न बनू ।

निश्चय ही एक वकील का यह कर्तव्य है कि वह अपने मुवक्किल के मामले को अदालत के सामने रखे, लेकिन उसे यह भी नहीं भूलना चाहिए कि न्याय को सहज बनाने में सहायता करना भी उसी का काम है। वकीलो और अदालतो का सम्मान तभी ठीक से कायम रह सकता है जब कि किसी मुकदमे मे वे दोनो पक्षों की न्याय्यता का उचित सीमा तक ध्यान रखें । दुर्भाग्यवश, इस केन्द्रबिंदु से अलग रहने की प्रवृत्ति देखी जाती है, जिसका परिणाम इतना जाहिर है कि उस पर अधिक कहने की जरूरत नहीं।

कुछ मास बाद एक और मुकदमा छोटी अदालत मे पेश होने को था।

इस वार भी मुझे मुद्दई की पैरवी करनी थी। इस मे सवूत पेश करने का भार मुझ पर था और मेरे गवाह हाजिर नही थे। गवाहो के लिए सम्मन जारी नही कराये गए थे, क्योकि मेरे मुवक्किल का कहना था कि वे मेरे कहने भर से ही आ जायगे। और वह इस वात का ध्यान रखेगा कि वे ठीक वक्त पर अदालत मे हाजिर हो जाय। मुकदमे की पेशी का वक्त हो रहा था।

मै शीघ्र ही मुकदमा पेश होने और अपने गवाहो को वुलाने के लिए अदालत द्वारा पर्याप्त समय न देने की वात को दृष्टि मे रख कर वडा परेशान था। मेरा खयाल है कि मेरी चिता मेरे चेहरे पर साफ जाहिर थी। एक वयोवृद्ध सज्जन ने, जो इत्तफाक से मेरे पास ही वैठे थे और भ्रातृभाव से मुझ मे दिलचस्पी भी रखते थे, मेरी चिता का कारण पूछा। मैने अपनी परेशानी उन्हे बताई। उन्होने तत्काल उसका उत्तर यह दिया "अरे, यह तो कोई बात नही। जैसे ही आवाज़ पडे, तुम्हे वस इतना ही करना होगा कि तुरत मजिस्ट्रेट से निवेदन कर देना कि मेरे गवाह मौजूद नही है, क्योकि सम्मन तामील नही हुए।"

मैने उत्तर दिया, "मै यह वयान कैसे दे सकता हू जव कि सम्मन जारी कराने की दर्खास्त ही नही दी गई।"

वे मुसकराए और वोले, "वेवी[1], मै यह कहता हू कि इस पेशे मे अभी तुम एकदम नये और कच्चे हो। क्या तुम यह नही जानते कि जज और क्लर्क की फाइलो मे वहुत-से मुकदमे भुगताने को होते हैं ?

---

१. १९०९ में मैं गुजरात क्लव का सदस्य वना था। इसमें वकीलो की वहुत वडी सख्या थी। मेरे नाना भी इसी क्लव के सदस्य थे और उन्हीं के कारण मेरा इन वकीलो से परिचय हुआ। इस नाते दुलार से मुझे वे 'वेवी' कहते और १९१९ तक मुझे इसी नाम से किया जाता रहा।

कोई भी यह मालूम करने की चिंता नही करेगा कि "सम्मन जारी कराने के लिए दर्खास्त दी गई है या नही। और तुम्हारे बयान को चुनौती भी नही दी जायगी।"

मैंने उत्तर दिया, "सभव है, ऐसा ही हो, लेकिन मेरा बयान तो रहेगा सचाई से दूर ही। और इसलिए मैं ऐसा बयान कैसे दे सकता हू ? वास्तव मे ऐसा बयान देने की मुझ मे हिम्मत नही।"

मेरे वरिष्ठ मित्र ने मेरे प्रति दिली हमदर्दी जाहिर की और इसे मेरी कमज़ोरी और बेवकूफी ही समझा। लेकिन मैं फिलहाल परेशान ही रहा और सोचता रहा कि यदि मुकदमा वस्तुत पेश ही हो जाय तो मुझे क्या करना होगा ? भाग्यवश, मैंने निर्णय कर लिया कि मै अदालत को वास्तविक स्थिति की सूचना दे दूगा और मुकदमा मुल्तवी करने की प्रार्थना करूंगा। इस के साथ-ही-साथ मुझे यह भी शका थी कि अदालत मुल्तवी की मेरी प्रार्थना को कही नामजूर कर दे, और फलस्वरूप मेरा मुवक्किल हार जाय। लेकिन किस्मत की बात कि अदालत का समय हो गया। उस दिन न तो मुकदमा पेश हुआ और ना ही मेरे मुवक्किल को मेरे सच कहने के निर्णय के कारण किसी तरह की हानि उठाने का मौका हुआ।

इस छोटी-सी घटना ने मुझे आम वकीलो के मनोविज्ञान और नैतिकता पर विचार करने के लिए विवश किया। झूठ बोलना क्यो आवश्यक समझा जाता है ? यद्यपि अपनी वकालत के आरंभिक दिनो मे, जिस मुकदमे का मैंने ऊपर जिक्र किया है, मै इसलिए घबरा गया था कि अदालत मुकदमे को मुल्तवी करने की इजाजत देगी या नही। लेकिन सालो तक वकालत करने के बाद अब मै कह सकता हू कि यदि अदालत को यकीन हो जाय कि जो तथ्य पेश किये गए है, वे सच है, तो वह उस सुविधा को देने मे विचार-शून्य नही होती। ऐसी अवस्था मे वकील-समाज मुकदमे के नतीजे हासिल करने के लिए गलत उपायो की जगह सचाई और विश्वास का वातावरण क्यो नही पैदा करता

चाहता जबकि यही नतीजे ईमानदारी और सचाई से भी प्राप्त किये जा सकते है ?

मुझे यकीन है कि यदि वरिष्ठ वकील अपने मुकदमो की पैरवी करने मे सचाई के सही मानदडो पर चले तो आज के आपदग्रस्त छोटे वकील, जिन्हे मेरे समय से अधिक बडे और घने क्षेत्र मे पदार्पण करना और परिणामत अधिक कठिनाइयो का सामना करना होता है, वकालती पेशे की उत्तम परपराओ का अनुसरण करेगे ।

: ८ :

पितृ-ऋण बनाम भौतिक लाभ

जो किस्सा मैं कहने जा रहा हूं, वह शायद मेरे सबसे ज्यादा सुख-पूर्ण संस्मरणो मे से एक है। यह इसलिए नही कि मैंने अपने मुवक्किल का मुकदमा सत्य और न्याय के बल पर जीता, बल्कि इसका कारण इससे भी कुछ अधिक वजनदार है, क्योंकि मेरे मुवक्किल ने ऐसा त्याग करने का साहस दिखाया था कि जिसे अपने ही ढग का एक बहुत बड़ा त्याग कह सकते है। और वह भी किसी अन्य उद्देश्य से नही, बल्कि मेरी इच्छाओ का, और मेरे उन विश्वासो का आदर करने के लिए ही उसने वैसा किया कि जिन्हे मैं मनुष्योचित-शिष्ठता और नैतिक-कर्तव्य समझता हूँ।

मेरा मुवक्किल और उसका पिता दोनो ही वकील के मुशी थे। "वकील का मुशी" भी एक खास वर्ग है, जिसे अदालती-दुनिया मे हर कोई जानता है। उनका दृष्टिकोण, उसके तरीके, नैतिकता और मनुष्यता की उनकी मर्यादा, और वस्तुत, उनके बारे मे सब-कुछ इतना जाना-पहचाना है कि उस पर अधिक लिखने की जरूरत नही। अपने मुवक्किल के पक्ष मे वह जिस कला का प्रयोग करता है, वह अत्यन्त विस्तृत होती है। कभी-कभी बहुत अच्छे वकीलो के लिए भी उनके उन अनधिकृत कार्यकलापो को सभालना असभव हो जाता है कि जिन्हे वह अपने मुवक्किल का अधिकाधिक हित करने की दृष्टि से करता है। और इतने पर भी, यह जान लेने पर अच्छा ही लगता है कि इनमे सब-कोई

उतने नीच भी नही होते कि जितना उनका आम आचरण देखकर पहले-पहल अनुमान कर लिया जाता है। कोई व्यक्ति चाहे जितना भी अधम और नीच हो, पर उसके सद्विचारों का मन स्रोत इतना कभी नही सूखता कि उसका सुधार ही न हो सके।

मै समझता हू कि मेरा यह दृढ विश्वास इस मुकदमे मे पूरी तरह लागू होता है। कानूनी भापा के अनुसार मेरा मुवक्किल और उसका पिता 'सयुक्त परिवार' के सदस्य थे। उसका विवाह कई वर्ष पहले हो चुका था। उसकी मा का आखें खराब थी और वाद मे वह विल्कुल अधी हो गई। सभी दृष्टियो से यह परिवार सुखी था। मेरे मुवक्किल के विवाह के कुछ ही दिनो वाद उसके पिता की नज़र एक और जवान ब्राह्मण-विधवा पर पडी, जिसका बूढा पति कुछ ही मास पूर्व मरा था। मेरे मुवक्किल के पिता की नज़र उसके धन पर थी, इसलिए उसने अपने युवा पुत्र को उससे मेल-जोल वढाने को प्रोत्साहित किया। सयोगवश वह विधवा उसके पुत्र की पहली पत्नी से निश्चय ही ज्यादा सुंदर और अक्लमद थी।

जैसी कि आशा थी, युवक-युवती अर्थात् मेरे मुवक्किल और उस विधवा के वीच शीघ्र ही घनिष्ठता वढती गई। थोडे ही दिनो वाद यह मालूम हुआ कि कथित विधवा वास्तव मे विधवा नही थी। उसका पहला पति, जो मरनेवाले वृद्ध मनुष्य से भिन्न था, जिन्दा था। वह अपने पति के पास से वहकाकर ले आई गई थी और उन वहकानेवालो ने एक रकम के वदले यह कहकर उस वृद्ध के साथ उसका विवाह कर दिया था कि वह उसीकी जाति की अविवाहित लडकी है। उसका पहला और असली पति किसी देशी रियासत का रहनेवाला था और उसने अपनी पत्नी और उसको वहकानेवालो के विरुद्ध फौजदारी दावा दायर कर दिया।

मेरे मुवक्किल के पिता को जव ये वातें पता लगी तो उसकी प्रतिक्रिया यह हुई कि उसने अपने पुत्र को उस स्त्री के साथ भाग जाने की सलाह दी। उन्होने वैसा ही किया और दोनो ने पाच-छ वर्प तक अहमदावाद से वाहर रहने का निश्चय किया। इस वीच उन दोनो की घनिष्ठता

अत्यन्त प्रेमपूर्ण सम्बन्ध में बदल गई और जब मेरा मुवक्किल एक पेशेवर जादूगर बन गया तो उसकी मुख्य सहायिका बनकर उसने उसे आजीविका कमाने मे भी सहायता दी। इस निर्वासन-काल में मेरा विचार है कि उन दोनों के एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ और वे दोनो सम्मानपूर्वक पति-पत्नी के रूप में रहने लगे थे।

इस साहसिक ढग मे रहते हुए छः वर्ष व्यतीत हो गए। इस घुमक्कड जीवन में उन्होने सारे उत्तर भारत और बर्मा का भ्रमण किया। इन लम्बे वर्षों मे मुद्दई पति उन्हे ढूढने मे असफल रहा। अन्तत उसने उन्हे खोज-निकालने की आशा छोड दी और अपना फौजदारी दावा भी वापस ले लिया। जैसे ही मेरे मुवक्किल को अपने पिता द्वारा यह सूचना मिली कि वह अपनी मनपसन्द स्त्री के साथ बेखटके घर लौट सकता है तो उसने वैसा ही किया। लेकिन लौट आने पर वह पिता से अलग रहने लगा।

पिता को अब यह मालूम हो चुका था कि कथित विधवा उसकी आशा के अनुरूप दहेज नही लायगी, क्योंकि मृत ब्राह्मण की सारी सम्पत्ति पर उसके अवैध उत्तराधिकारियो ने दावे दायर कर दिये थे, और वह उन्हे मिल भी चुकी थी। दूसरी ओर तथाकथित विधवा उसकी कानूनी तौर पर ब्याही पत्नी नही थी, इसलिए उसे कुछ नही मिला था। इस तरह न केवल यह कि उसका बना-बनाया खेल बिगड गया, बल्कि उसे अपनी बिरादरी के लोगो की कटु आलोचना का भी शिकार होना पडा, क्योंकि उसका लडका एक भिन्न जाति की युवती को लेकर भाग गया था।

नतीजा यह हुआ कि जहा पिता के लिए यह सामाजिक निंदा सहन करना कठिन था, वहा पुत्र उस स्त्री को छोडने मे सर्वथा असमर्थ था, जो उसके प्रति इतनी वफादार थी। वह विधिवत विवाहित स्त्री के समान ही उसकी रक्षा भी करना चाहता था। वह जिस स्त्री से प्रेम करता था, उसके प्रति उसकी यह भावना वस्तुत सराहनीय थी जबकि उसके पिता का दृष्टि-कोण केवल पैसा था। इसलिए उन दोनों मे समझौता न हो सकना स्वाभाविक था। अत पुत्र अपनी नई पत्नी तथा बच्चे के साथ अहमदाबाद लौट-

कर भी पिता से जुदा ही रहा । उसकी पहली पत्नी और माता उसके पिता के साथ ही रहती थी । किन्तु कुछ दिन बाद पहली पत्नी का भाई भी उसके पिता के साथ रहने लगा और उसने भी वकील के मुशी का ही काम शुरु किया ।

अब मेरे मुवक्किल के पिता के परिवार मे उसकी अधी मा, उसकी पहली पत्नी और उसकी पत्नी का भाई थे । निश्चय ही पिता भी मानवीय दुर्बलताओ से ऊपर नही था और मेरे मुवक्किल का विश्वास था कि उसके पिता का अपनी पुत्रवधू के साथ अनुचित सबध है। दूसरी ओर पिता अपने पुत्र पर दबाव डाल रहा था कि वह अपनी नई पत्नी को छोडकर अपने असली परिवार मे शामिल हो जाय, अन्यथा उसे सयुक्त परिवार की सम्पत्ति के भाग से हाथ धोना पडेगा। वह दृढतापूर्वक यह भी कह रहा था कि सारी सम्पत्ति उसकी खुद की कमाई है, इसलिए वह उसे अपनी पुत्र-वधू के भाई के नाम वसीयत कर जाना चाहता है ।

इधर मेरे मुवक्किल को यह कतई पसद नही था और उसने विशेष-तया इस ख्याल से सपत्ति पर अपने अधिकार को स्थापित करने का फैसला किया कि उसकी अत्यत दुखियारी माँ के जीवन-निर्वाह का सुप्रबध हो सके । पहले तो दोनो पक्ष इतने सुलझे हुए थे कि सपत्ति के स्वरूप-विषयक प्रश्न को वे मामला ही नही बनाना चाहते थे, लेकिन अपने पिता की चालाकियो से तग आकर अतत पुत्र को अपना अधिकार स्थापित करने के लिए उसे कानूनी नोटिस देना ही पडा ।

इससे बौखलाकर पिता ने अपनी पुत्रवधू पर ज़ोर डाला कि वह अपने पति के विरुद्ध अत्याचार और परित्याग के आधार पर जीवन-निर्वाह के लिए दावा करे। इसके जवाब मे हमने पत्नी पर विवाहित सबधो की पुन स्थापना का दावा करने का निर्णय किया । दोनो मुकदमो की सुनवाई साथ-साथ हुई और पिता ने पत्नी द्वारा लगाये गए निर्दयता आदि के आरोपो के समर्थन मे गवाही दी ।

पिता के साथ जिरह के दौरान मे मेरा मुवक्किल मुझसे आग्रह करता

कहा कि मैं उसकी पत्नी और पिता के बीच स्थापित अनुचित संबंध के विषय में भी सवाल-जवाब करूँ। मैंने संकोच किया। यह इसलिए नहीं कि किसी कारणवश मुझे अपने मुवक्किल पर अविश्वास था, बल्कि इसलिए कि मैं पिता-पुत्र के संबंध को ऐसा मानता हूं कि पिता के खिलाफ पुत्र को, सत्य होते हुए भी, सार्वजनिक रूप मे इस प्रकार के आरोपो का उल्लेख नहीं करना चाहिए। आखिर जन्म तो उसे उसी पिता ने दिया है! वह अपने निजी अस्तित्व के लिए अपने पिता का ऋणी है। यद्यपि यह ठीक है कि ऐसा संबंध अपमानपूर्ण और लज्जाजनक है, तथापि एक पुत्र के लिए सार्वजनिक रूप में पिता पर ऐसा अपराध लगाना पाप है। मैं यह बेहतर समझता था कि मेरा मुवक्किल ऐसी बात को सिद्ध करके जीतने का अवसर प्राप्त करने की बजाय मुकदमा हार जाय और पत्नी को मृत समझ ले।

इसलिए मैंने पिता के साथ घनिष्ठता-संबंधी जिरह करने से इन्कार कर दिया और अपने मुवक्किल को इसका कारण भी समझा दिया, यहांतक कि मैंने उसके समक्ष यह प्रस्ताव रखा कि मैं इस मुकदमे से हट जाऊ और अदालत से यह निवेदन करू कि वह मेरे मुवक्किल को दूसरा वकील करने के लिए मौका दे। मैंने उसे यह भी समझा दिया कि मैं उसके रवैये से नाराज नहीं हूं। मेरे हट जाने का प्रस्ताव केवल इसलिए है कि मैं एक ऐसे कार्य के झमेले मे बच जाऊंगा जिसे मैं बिल्कुल अनुचित समझता हूं।

साथ ही मैंने यह भी स्वीकार किया कि उसे इस प्रकार के प्रश्न पूछने का अधिकार है, किन्तु मुझे इस बात से अधिक प्रसन्नता होगी कि वह मेरी सलाह मान ले। और उसने मेरी बात मान ली। इससे मैं बहुत आनंदित हुआ, क्योंकि मेरे मुवक्किल ने मुकदमे से सम्बद्ध सारे जोखिम उठाकर ही मेरे दृष्टिकोण को स्वेच्छा से स्वीकार किया, और उसकी बहू के साथ घनिष्ठता के प्रश्न पर कोई संकेत किये बिना ही पिता के साथ जिरह समाप्त हो गई।

मेरा विचार है कि जहांतक गुजारे के खर्च और विवाहित अधिकारों की मांग का संबंध था, हमारा पक्ष काफी प्रबल था। लेकिन जज विपरीत रहा और उसने हमारे खिलाफ फैसला दिया। मैंने अपील करने की

सलाह दी, जो समय पर दायर कर दी गई। हमारी अपील मंजूर हुई और हमारे जीतने का भी अच्छा अवसर था।

अपील करने के लगभग आठ-दस मास बाद मेरे मुवक्किल का पिता बहुत बीमार हुआ और उसके बचने की बहुत कम आशा रह गई। मृत्यु-शय्या पर उसके पिता की ममता जागी। अपने पुत्र का मुह देखने का बहुत इच्छुक होने पर उसने पुत्र के पास आग्रहपूर्वक सदेश भेजे कि वह कम-से-कम एक बार अवश्य आकर उससे मिल जाय। मेरा मुवक्किल मेरे पास सलाह के लिए आया। पिता की इच्छा ने भी उसके मन को छू लिया, पर चूकि उसकी मा की दशा शोचनीय थी और उसके भविष्य के लिए क्या था, इस बात की चिंता के कारण उसकी मा के प्यार का उसपर अधिक प्रभाव था। उसने मुझसे कहा कि यदि वह अपने पिता से मिलने जायगा तो वह उससे अपील वापस लेने की प्रार्थना करेगा, जिसका अर्थ यह होगा कि न केवल वह पैतृक सपत्ति से वचित रह जायगा, वरन् उसे निश्चय ही अदालत के फैसले के अनुसार गुजारे के खर्च की रकम भी अदा करनी पडेगी। हम दोनो ने अपनी स्थिति की अडचनो पर उत्सुकतापूर्वक विचार किया और मैंने निश्चयात्मक रूप से यह सलाह दी कि पुत्र के नाते उसका यह कर्तव्य है कि वह न केवल अपने पिता से मिलने ही जाय, वरन् मृत्यु-शय्या पर वह जो भी इच्छा करे, उसे पूरा करे।

निस्सदेह, अपने मुवक्किल—उस पुत्र—से ऐसा कहना एक भारी त्याग की माग थी। यह उसकी अच्छाई थी कि उसने स्वेच्छा से मेरी सलाह को स्वीकार कर लिया और तुरत अपने पिता के पास गया, और जैसी कि आशा थी, पिता ने अपीलो की वापसी के लिए आग्रह किया और उस कर्तव्य-परायण पुत्र ने उसे पूर्ण किया।

मेरा विश्वास है कि पाठक स्वय ही पिता-पुत्र के वर्षो के विरोध के बाद, पिता की मृत्यु-शय्या पर दोनो के मिलन और स्नेहपूर्ण आलिगन के दृश्य की अधिक सुदर कल्पना कर सकते हैं, बजाय इसके कि मै उसका वर्णन करू। क्या यह एक वकील के रूप मे मेरे कार्य की वास्तव मे सुखपूर्ण

सिद्धि नही है ? यदि हमने अपीलें जीत भी ली होती तो वह जीत पिता और पुत्र के बीच अतत मेल से बेहतर कैसे हो सकती थी ? विचारों मे अतर हो सकता है, किंतु मै आज भी उस नतीजे पर प्रसन्न होता हू और गर्व भी अनुभव करता हू ।

: ९ :

नैतिक दृष्टिकोण और सिद्धांत

एक साल तक वकालत करने के बाद मेरे कालेज के एक दोस्त नगर-पालिका मे एक जिम्मेदार ओहदे पर लग गए थे। अपने भानजे के घरेलू झगडो की वजह से वह परेशान थे। उन्होने मुझे बताया था कि उनके भानजे की बीवी बहुत गरम-मिजाज है और अपने पति और सास के लिए हमेशा के लिए एक समस्या बन गई है। जब-तब परिवार मे झगड़ा होता रहता और गदे-से गदे तथा बुरे शब्दो का इस्तेमाल किया जाता। एक दिन हालात बिगड गये, जिससे उनका भानजा गुस्से मे आपे से बाहर हो गया और उसने अपनी पत्नी को सबक सिखाने के लिए उसे कोडे से पीटा।

जिस समय यह झगडा हुआ, मेरे दोस्त बहुत दूर अपने जन्म-स्थान पर गये हुए थे और उनकी बहन भी मकान के पिछवाडे अपने घरेलू कामो मे व्यस्त थी। निस्सदेह, बीवी पर इस तरह हाथ उठाना बिल्कुल अनुचित था। वह अपनी पत्नी के साथ पेश आने मे इससे अधिक सभ्य तरीका इस्तेमाल कर सकता था और बिगडे हालात पर अधिक सफलता से काबू पा सकता था। फिर भी, यह बिला शक के मानना होगा कि जिन हालतो ने उसे उत्तेजित किया वे बहुत गभीर थे, और बदकिस्मती से यह इत्तिफाक था कि कोडा आसानी से उसके हाथ लग गया।

जो हो, जहातक पति ने पत्नी के शरीर पर हिंसक आघात किया था वहातक पत्नी की अपने पति के विरुद्ध शिकायत उचित थी और

पति का ऐसा करना कानून के भी खिलाफ था। परिणामत. उसके पिता या भाई ने जोर डालकर उसे अपने पति के खिलाफ कार्यवाही करने के लिए उकसाया। सम्भव है, बदला लेने की अन्त भावना ने भी उसकी इस बात को दृढ किया हो।

फौजदारी मामले मे मशहूर एक वकील को पत्नी की ओर से तय किया गया। वह वकील, वास्तव मे जैसीकि उम्मीद की जा सकती है, बम्बई विश्वविद्यालय से डबल ग्रेजुएट—बी ए, एल-एल बी.—था। लेकिन मैं यह नही समझ सका कि कैसे कोई वकील, जो विवाहित दपति के भावी जीवन का कल्याण चाहता हो, ऐसी कानूनी कार्यवाही करने की सलाह दे सकता है, जिससे कि पति-पत्नी की कोमल भावनाओ मे सदा के लिए कड़-वाहट पैदा हो और भविष्य मे उनके फिर से स्नेहपूर्वक साथ-साथ रहने की सारी सभावनाए नष्ट हो जाय। दूसरी ओर, उसके बारे मे जो कुछ कहा जा सकता है, वह यह है कि अगर वह ऐसा नही करता तो मुकदमे से होनेवाली आय से उसे हाथ धोना पडता।

जहातक कि मामला अबतक पेश था, उसका रूप नकारात्मक था। लेकिन वकील ने पत्नी को सलाह दी कि वह न केवल अपने पति के खिलाफ मुकदमा दायर करे, बल्कि मेरे दोस्त (पति के मामा) और उनकी बहन (पत्नी की सास) को भी किसी तरह इस जुर्म मे फसाए। इसपर एक कहानी गढी गई, जिसका आशय था कि पति ने पत्नी पर उन दोनो की मौजूदगी मे कोडे का इस्तेमाल किया। वे दोनो लगातार उसके पति को उकसा रहे थे कि उसकी खूब अच्छी तरह मरम्मत करे, ताकि उसे ऐसी नसीहत हासिल हो, जिसे वह कभी आसानी से न भुला सके। इतना ही नही, उन्होने उस बेबस के लिए गालियो और गदे शब्दो का भी प्रयोग किया।

घर मे पुत्रवधू की स्थिति असहाय-जैसी थी। अत यह स्वाभाविक था कि पडोसियो और दूसरे लोगो की हमदर्दी उसके साथ हो गई, और सभव है कि शुरू-शुरू मे अदालत की हमदर्दी भी उसके साथ थी। ऐसी दशा मे मेरे दोस्त मेरी सलाह और सहायता के लिए मेरे पास आये और

अक्सर वह मेरी दोस्ताना राय के लिए मेरे पास आया भी करते थे।

मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ कि एक वकील, जो डबल ग्रेजुएट होने का दावा करता है, अपने-आपको इतना नीचा गिरा दे कि इस तरह की झूठी कहानी गढे। वह भी इसलिए कि अपने मुवक्किल की बदले की भावना को भडकाकर खूब रकम कमाये। इसमे कोई शक नही कि वह स्वार्थवश यह कर रहा था। वह झूठ और नफरत का वातावरण पैदा कर रहा था और इस तरह मानवता की उन ऊची भावनाओ को कुचल देने का वह जिम्मेदार था, जो बहुमुखी सबधो के साथ समाज के ढाचे को स्थिर रखती है।

इस समय तक मुझे उन हथकडो से बुरी तरह नफरत हो गई थी, जिन्हे वकील और उनके पिट्ठू फौजदारी के मुकदमो मे इस्तैमाल करते है। अत मैंने अपने दोस्त से कहा कि यद्यपि मैं उसके बचाव के लिए पैरवी करने को तैयार हू, तथापि मैं उनके भानजे (पति) को दड पाने से नही बचा सकूगा। मैंने उन्हे सलाह दी कि उनका भानजा उन दुर्बल स्थितियो का जिक्र करते हुए अपना दोष स्वीकार कर ले और सबकुछ अदालत के फैसले और बुद्धिमत्ता पर छोड दे। दूसरे, उनके भानजे ने गलती की है, इसलिए उसे दड के प्रायश्चित्त के रूप मे यह यातना ग्रहण करनी ही चाहिए। अत मे, मैंने अपनी बात यह कहकर समाप्त की कि मैं केवल उनके तथा उनकी बहन के बचाव के लिए जो कुछ हो सकेगा, करूगा।

यह जाहिर था कि मेरी राय को मान लेना मेरे दोस्त के लिए मुमकिन नही था। इसलिए मैंने दूसरी बेहतर सलाह यह दी कि वह फौजदारी मामले के किसी प्रसिद्ध वकील को कर ले और इस मामले को पूरी तरह उसकी सलाह और पथ-प्रदर्शन पर छोड दे। मै यह भी मानता हू कि मैं यह देखने के लिए बहुत उत्सुक था कि अभियुक्त पति का बचाव किस तरह किया जा सकता है। लेकिन मैंने वायदा किया कि उनपर लगाये गए व्यक्तिगत आरोपो के सिलसिले मे जो भी मदद हो सकेगी, करूगा।

यथासमय, इण्डियन सिविल सर्विस के एक अग्रेज सदस्य के, जो मजिस्ट्रेट

के स्थान पर काम कर रहे थे, सामने मुकदमे की सुनवाई हुई। मुद्दई (पुत्र-वधू) के साथ जिरह खत्म हो जाने पर मेरे दोस्त और उनकी बहन को लगाये गए इल्जाम से बरी कर दिया गया। लेकिन जाब्ता फौजदारी के मातहत उसके पति के खिलाफ फर्द जुर्म लगा दिया गया।

मै ईमानदारी के साथ कहता हूँ कि मैं यह देखने के लिए बहुत उत्सुक था कि पति इस परिस्थिति मे किस प्रकार अपनेको अदालत से बरी करता है। इसी बीच मेरे वरिष्ठ वकील मित्र ने बचाव के लिए एक सीधी और साहसपूर्ण योजना बनाई। उस योजना की हिम्मत इस तथ्य से प्रकट होती है कि इसमे नैतिक भावनाओ को बिल्कुल तिलाजलि दे दी गई थी। वास्तव मे कोई भी आत्मावाला आदमी या शिक्षित होने का दावा करनेवाला व्यक्ति उसमे अरुचि अनुभव कर भाग खडा होता। यह स्पष्ट था कि ऐसा करने मे वकील का एक ही मकसद था कि किसी भी तरह से अपने मुवक्किल को बचाना। क्या मुवक्किल ने इसके बदले मे उसे रुपये नही दिये थे ? इसलिए उसके सामने अपने मुवक्किल को बरी कराने के सिवा और क्या महत्व की बात हो सकती थी ? यह दुर्भाग्य है कि अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस तरह के हथकडो को कुशलता माना जाता है। वास्तव मे ऐसे लोग है, जो इस तरह की होशियारी की तारीफ भी करते हैं।

इन सारी कहानी का सार यह है कि वकील ने बचाव के लिए यह युक्ति गढी कि झगडे के दौरान मे वादी की पत्नी के साथ हाथापाई हो गई और उसने उसके शरीर के गुप्त अगो को पकड़कर उसे असह्य कष्ट मे डाल दिया। इसपर उसके पास अपनेको उसकी निर्दय पकड से मुक्त करने के लिए सिवा इसके कोई चारा नही रह गया था कि वह अपना चाबुक चलाये। सक्षेप मे, उसने अपने मुवक्किल को बचाने के लिए आत्मरक्षा का तर्क अपनाया।

लेकिन हमारा चालाक वकील केवल बचाव का तर्क गढकर ही चुप नही बैठा रहा। उसे अपने मुकदमे पर जोर देने के लिए आवश्यक प्रमाण जमा करने थे। वह और भी आगे बढा और एक योग्यता-प्राप्त सहायक सर्जन को, जो एक सरकारी नौकर था और जिसके पास डाक्टरी की डिग्री थी,

अपने बचाव के पक्ष मे झूठी गवाही देने के लिए लाने मे समर्थ हो गया।

डाक्टर ने गवाही दी कि पति उसके पास ऐसी अवस्था मे आया कि जिससे अभियोग की पुष्टि होती है और उसमे इलाज कराया। चूकि अभियुक्त यह नही चाहता था कि ऐसी अपमानजनक घटना के फैल जाने मे वह अपमानित हो, इलाज-सबधी कोई विवरण-पत्र या बिल नही बनाये गए। झूठी गवाही देने के लिए डाक्टर को बीस रुपये मिले। उसने अपना पार्ट ऐसी खूबी से अदा किया कि अभियुक्त की अपने बचाव की दलील स्वीकार कर ली गई। वह छूट गया।

जिस वकील ने मेरे मित्र और उसके भानजे की पैरवी की, उसकी मशा थी कि ये सब सदिग्ध कार्यवाहिया मुझसे गुप्त रखी जाय। स्वभावत वह नही चाहता था कि इस प्रकार के भेद खुलने से वरिष्ट वकील के रूप मे मेरी श्रद्धा उसपर कम हो जाय। तो भी, मेरा मित्र मेरे प्रति अधिक सद्भावना रखता था। इस शर्त पर कि मैं उसके वकील को यह सदेह नही होने दूगा कि मैं प्रत्येक बात से अवगत हू, वह मुकदमे के प्रतिदिन के हालात से मुझे पूर्ण रूप से अवगत करता रहा।

हमारी समस्या केवल यह है कि जो लोग शिक्षित होने का दावा करते हैं, उनके ऐसे आचरण के रहने पर समाज को किस प्रकार सभाला जाय और कैसे उसका सुधार किया जाय ? यह दु ख की बात है कि शिक्षित लोग चरित्र-हीनता के प्रदर्शन का स्तर बहुत नीचा कर रहे हैं। यहापर वर्णन की गई घटना १९१५ या १९१६ के आस-पास की है। तबसे दुनिया बहुत आगे बढ गई है, परन्तु समाज-विरोधी झूठ और भ्रष्टाचार मे हवा तबसे भी अधिक बोझिल मालूम होती है।

: १० :

कानूनी न्याय बनाम सच्चा न्याय

जब मैंने कानून की परीक्षा पास की तब मुझे कानून के क्षेत्र का समुचित ज्ञान नही था और 'रजिस्ट्रेशन', 'लिमिटेशन' इत्यादि तकनीकी मामलों के वास्तविक उद्देश्य की तो और भी कम समझ थी। वैसे मैंने कई बार देखा था कि इस प्रकार के नियम वास्तव मे दोनो पक्षो के लिए सच्चे न्याय को हानि ही पहुचाते थे।

मानव-निर्मित सभी सस्थाओ की तरह कानून को लागू करने के लिए निर्मित प्रथा का भी अपूर्ण होना अनिवार्य ही है। ऐसे कायदे-कानून बनाना, जो कि हरेक मामले को न्यायोचित और निष्पक्ष तरीके से सुलझा दें, असभव है। लेकिन जिन नियमो को 'तकनीकी नियम' कहा जाता है उनका प्रमुख उद्देश्य तो अन्यायी या झूठे दावो से लोगो की रक्षा करना होता है। वे दैनिक जीवन के कार्यकलाप की व्यावहारिक आधारभूमि और समाज मे साधारणत: होनेवाले आदान-प्रदान के अनुभव पर टिके हुए है।

उदाहरण के तौर पर यदि 'लिमिटेशन' के नियम न होते तो मेरे परदादा द्वारा पचहत्तर वर्ष पहले लिखे रुक्के की रकम की वसूली के लिए 'अ' के मुकदमा दायर करने पर अपने बचाव का मेरे पास कोई प्रमाण न होता। भला कैसे मै प्रोनोट के अतर्गत अपने दायित्व को स्वीकार या अस्वीकार करने की स्थिति मे होता ? या कैसे अपने बचाव मे यह कह सकता कि 'समय बहुत बीत गया है' या 'भुगतान हो गया है'

आदि ? यह तो कल्पना भी नही कर सकता कि कोई इतने वर्षो की रसीदें सभालने की तकलीफ करेगा।

अगर बहुत लम्बे, या काफी समय तक मुकदमा दायर न किया जाय तो यही मान लिया जाता है कि ऋण चुका दिया गया है। लिमिटेशन का कानून बस इसी मान्यता को स्वीकृति देता है। अब अगर इन धाराओं का बेईमान लोग गलत लाभ उठाते है तो मुझे नही मालूम कि उनसे कैसे बचा जाय। मेरा तो विचार है कि यह वकील का काम है कि अगर उसके मुवक्किल ने अपना दायित्व न निभाया हो तो वह उसे इन नियमो का अनुचित लाभ न उठाने दे।

एक सुखद स्मरण से मेरे उक्त कथन की सत्यता सिद्ध हो जाती है। बात सन् १९१८ के आस-पास की है, जब मेरे एक मुवक्किल पर दावा दायर किया गया था। बात यो थी कि वह लगातार बीस वर्ष से एक मकान मे किरायेदार था। उसका मकान-मालिक हर तीन वर्ष के बाद उसे किराये का नया पट्टा बना देता था, पर किसी भी समय उन्होने उस इकरारनामे की रजिस्ट्री नही करवाई थी। दोनो पक्षो को एक-दूसरे पर विश्वास था और किरायेदार और मकान-मालिक के रूप मे उनके सम्बन्ध बने रहे।

मूल मकान-मालिक की मृत्यु के बाद उसके पुत्र ने कार्यभार सभाल लिया और उसने भी पुरानी प्रथा को चालू रखा। सन् १७ या उसके आसपास किराये अचानक बहुत ही बढ गये और मकान-मालिक ने भी अधिक किराये की माग की। उसकी माग अनुचित एव बहुत अधिक थी। वह ८० रु० मासिक के स्थान पर ३०० रु० माग रहा था और इतना किराया देना मेरे मुवक्किल के लिए असभव था। यद्यपि तीन वर्ष का समझौता पहले से था, तथापि बढे हुए किरायो को ध्यान मे रखते हुए वह १५० रु० देने को तैयार था। लेकिन बात यह थी कि पट्टे के कागजात रजिस्ट्री नही करवाये गए थे और इससे मकान-मालिक को स्थिति का अनुचित लाभ उठाने का अवसर मिला—'अनुचित' इसलिए कि इसमे नैतिकता का प्रश्न भी था।

अब ऐसा हुआ कि मकान-मालिक ने कब्जे के लिए मुकदमा दायर

किया। स्वाभाविक रूप से मैंने अपने मुवक्किल के बचाव में यह दलील पेश की कि तीन वर्ष का इकरारनामा मौजूद है। मुझे पता था कि इस पैरवी के लिए कानूनी सबूत नही था, क्योकि रजिस्ट्री न कराये जाने के कारण वे कागजात अदालत के सामने पेश नही हो सकते थे। परिणामत सबूत देने का भार मुझपर था और यह लगभग निश्चित ही था कि वादी के पक्ष मे डिग्री हो जायगी।

मेरे लिए एकमात्र उपाय अब अदालत की अतरात्मा को दुहाई देने का था, यद्यपि फरियादी और उसके वकील पर ऐसी दुहाई का कोई असर नही हुआ था। लेकिन जहातक प्रश्न जज महोदय का था, हम खुशकिस्मत थे। वह अपने कर्तव्य के प्रति पूर्ण सजग थे। वह ऐसे व्यक्ति न थे, जो कानून का उपयोग न्याय, निष्पक्षता और आत्मा की सच्ची आवाज का हनन करने के लिए करते। जब मुकदमा शुरू हुआ तो वादी के वकील ने स्वाभाविक रूप से इस बात का आग्रह किया कि चूकि मकान के किराये पर होने की बात मानी जा चुकी है, इसलिए यह सिद्ध करने का भार मुझपर था कि किराये की अवधि तीन वर्ष की थी। इसके बाद उनके और जज साहब के बीच जो रोचक वार्तालाप हुआ, वह इस प्रकार है

जज मैं कानून जानता हू। ठीक है कि बचाव पक्ष को ही यह सिद्ध करना चाहिए कि किरायेदारी तीन वर्ष के लिए थी, पर पहले मैं वादी को शपथ दिलवाकर उससे पूछ-ताछ करना चाहता हू।

वकील भला वादी को गवाह के कटघरे मे क्यो बुलाया जाना चाहिए? प्रतिपक्षी को चाहिए कि वह अपनी तीन वर्षवाली बात साबित करे।

जज मैं किरायेदारी की अवधि के विषय मे कुछ भी कुबूल नही करवाना चाहता। वादी सिर्फ इकार कर दे (कि तीन वर्ष की किरायेदारी नही थी)। अगर वह शपथ लेने के बाद झूठ बोलेगा तो आगे मैं देखूगा कि क्या करना है।

जज के मुख से ये वचन सुनकर वकील कुछ ढीला पड गया। मौखिक करार का बेईमानी से उठाकर अपने मुवक्किल को फायदा पहुचाने की

उसकी पूर्व-निश्चित चाल सफल न हुई। झूठ वोलने पर जज ने वादी को सजा देने की धमकी दी थी। वकील ने समझौते की प्रार्थना की और १२० रु० मासिक के आस-पास किराया तय करने को राजी हो गया। दोनो पक्षो मे आपसी समझौता होने पर मुकदमा खारिज कर दिया गया।

मै इस परिणाम से बहुत प्रसन्न हुआ, न सिर्फ इसलिए कि मेरे मुवक्किल की जीत हुई, बल्कि इसलिए कि जज ने अपना कार्य भली-भाति समझा और न्याय किया। इसी प्रकार के न्यायाधीश समाज का सही नेतृत्व कर सकते है।

: ११ :

वकील और साधारण मनुष्य में नैतिक आस्था

वकालत शुरू करने के बहुत पहले से ही अहमदाबाद और बम्बई के सम्मानित एव अच्छे वकीलो से मेरा परिचय हो चुका था। वकालती पेशे मे मेरा निकट सपर्क एक ऐसे मुकदमे से हुआ, जिसमे मेरा परिवार उलझा हुआ था। यह घटना इस प्रकार है

अहमदाबाद कलक्टरी मे मेरे पिता के दादा दो इनामी गावो के जागीरदार (अनुदान-भोगी) थे। इस अनुदान की यह शर्त थी कि इस इनाम का उपभोग 'अनुदान-भोगी तथा उसके दो उत्तराधिकारी कर सकेंगे।' मेरे पिता का १६०४ मे देहावसान हो गया था। वह इस शृखला मे अनुदान-भोगी के पोते थे और जिनके नाम ये गाव सरकारी कागजात मे चढे हुए थे। अतः सरकार ने इन गावो को वापस लेने का दावा किया। अभी मेरे पिता के चाचा और उनके पुत्र (मेरे पिता के चचेरे भाई) जीवित थे और हमारी यह धारणा थी कि अनुदान भोगी के किसी भी पौत्र के जीवित रहने तक हम इन इनामी गावो से अनुदान प्राप्त कर सकते है। वास्तव मे हमारे विचार मे 'दो उत्तराधिकारी' शब्दो से अभिप्राय 'दो पीढियो' से था।

मूल सनद के विवादास्पद अश की व्याख्या कराने के लिए हमने अदालत का द्वार खटखटाया। क्योंकि सरकार इन गावो को हथियाने की धमकिया दे रही थी, इसलिए हमने जाब्ता दीवानी की अनिवार्य शर्त के अनुसार सरकार को दो महीने का नोटिस दिये बिना ही यह मुकदमा

चल सकता था अथवा नही । नोटिस के कानूनी होने और मुवक्किल की प्रामाणिकता दोनो ही आधारो पर पहली अदालत मे हम जीत गए। सरकार ने बम्बई हाई कोर्ट मे अपील की और मेरे पिता के चाचा मुद्दालय थे, जिन्होने सन् १९०४ मे यह मुकदमा दायर किया था।

बम्बई उच्च न्यायालय मे जब कभी मुकदमे की सुनवाई होती थी, मेरे पिता के चाचा को काफी दौड-धूप करनी पडती थी और साथ ही बम्बई के वकील को जरूरी निर्देश देने के लिए अपने स्थानीय वकील को भी साथ ले जाना पडता था। हमने इस मुकदमे के लिए बम्बई के सर्वश्रेष्ठ वकील को किया था। आज जबकि मै उस सारी स्थिति पर गौर करता हू तो मै महसूस करता हू कि बम्बई मे सुनी जानेवाली अपील के लिए अहमदाबाद के वकील को करने की आवश्यकता ही नही थी।

आखिर सारे मामले का निर्णय कागजात मे दर्ज तर्कों और सत्यो के आधार पर ही होना था। अहमदाबाद का वकील इस सम्बन्ध मे बम्बई के वकील की कोई भी सहायता नही कर सका, जिससे उसकी सार्थकता सिद्ध हो सकती। लेकिन कोई भी मुवक्किल चूकि ऐसे मामलो मे किसी तरह का जोखिम उठाने के लिए तैयार नही होता, इसलिए वह अतिरिक्त व्यय का भार उठाने को तत्पर रहता है।

अहमदाबाद का वकील यद्यपि हमारे परिवार का एक सुपरिचित मित्र था तथापि उसने जो रुख इस मामले मे अपनाया, वह असाधारण था। जब कभी बम्बई से सूचना मिलती कि उसकी उपस्थिति की वहा आवश्यकता है, वह अपनी पूरी फीस पेशगी लिये बिना बम्बई जाने की सोचता तक नही था। उसका इस प्रकार का आचरण और हमारे प्रति अविश्वास अक्सर मुझे बडा परेशान और बेचैन कर देता था। हमारे ही घरेलू वकील का हमपर इतना अविश्वास क्यो?

बम्बई के वकील के साथ जो बात हुई, उसकी एक जुदा कहानी है। अभी अपील की सुनवाई होनी ही थी कि मेरे पिता के चाचा गुजर गये। इसलिए सरकार के लिए अनिवार्य था कि वह छ महीने के अन्दर-अन्दर

मुद्दालय के उत्तराधिकारी का नामाकन कराती। हालाकि स्थानीय अधिकारियो को मुद्दालय की मृत्यु का पूरा-पूरा ज्ञान था, फिर भी सरकार ने ऐसा नही किया। अत अपील खारिज हो गई।

दो वर्ष के लबे अरसे के बाद सरकार ने बम्बई उच्च न्यायालय के सामने प्रतिवादी के उत्तराधिकारी का नाम पेश किया। इस देरी के लिए जो कारण सरकार की ओर से सामने रखे गये थे, वे मुझे एकदम लेचर लगे, लेकिन न्यायालय ने इस देरी को क्षम्य ठहराकर नाम स्वीकार कर लिया। इसपर बम्बई के वकील ने एकदम नई फीस की माग की। मुझे बडा आश्चर्य हुआ। उसकी दलील थी कि जिस मुवक्किल की ओर से वह इस मुकदमे की पैरवी कर रहा था, वह मर चुका है। अब उसे नये मुवक्किल की ओर से मुकदमे की पैरवी करनी होगी, इसलिए वह नई फीस का हकदार है।

उसने यह नही सोचा कि मुकदमा तो वही-का-वही था और प्रामाणिकता के आधार पर अबतक उसकी सुनवाई भी नही हुई थी। उसका यह दृष्टिकोण यकीनन मौलिक और विलक्षण था, लेकिन नैतिक दृष्टिकोण से मुझे यह बात बहुत ही कष्टप्रद लगी। उस वकील ने मुकदमे की अपील की पूरी सुनवाई के लिए सारी फीस ले ली थी। लेकिन जहातक सबध मुकदमा निपटाने का था, उसने अबतक कुछ भी नही किया था। वस्तुतः उसे उस मुकदमे की अखीर तक पैरवी करनी ही चाहिए थी, क्योकि किसी भी दृष्टि से नये तौर पर उसे तैनात नही किया गया था। तकनीकी तौर पर शायद ऐसा होता हो और वकील दोबारा भी पूरी-की-पूरी फीस झाड लेते हो।

इन अनुभवो का मुझपर गहरा असर हुआ और मैं इस निर्णय पर पहुचा कि जहातक मेरा निजी प्रश्न है, मैं अपने हर मुवक्किल पर विश्वास करूगा और फीस की रकम तत्काल या पेशगी देने के लिए उनपर दबाव नहीं डालूगा। यदि वह फीस दे देता है, तो ठीक ही है और अगर वह ऐसा नहीं कर पाता तो मुझे उसे सदेह का लाभ देना ही चाहिए। कभी-कभी कोई व्यक्ति अनेक कारणो से अपने फर्ज को पूरा नही कर पाता तो इसका यह अर्थ कदापि नही लगाया जा सकता कि वह बेईमानी से दूसरे की वाजिब अदा-

यगी से पिंड छुडाना चाहता है।

अपनी वकालत के लवे समय मे मैने अपने मुवक्किलो से इसी विश्वास के आधार पर व्यवहार किया है और आज इस क्षेत्र से पृथक् हो जाने पर इस बात की घोषणा करते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है कि मानव-स्वभाव मे मेरा विश्वास आशातीत उचित सिद्ध हुआ।

मैंने लाखो रुपये कमाये, लेकिन केवल दो ऐसे आदमियो से मेरा पाला पडा, जिन्होने मेरी फीस मुझे नही दी और वह रकम कुल १५०० रुपये थी। उनमे से एक वास्तव मे अपनी गरीबी के कारण रुपया देने मे असमर्थ था, लेकिन दूसरा, जो कि धनी था, बेईमान निकला। मेरी फीस की रकम रोककर वह किसी दूसरे काम मे मेरा उपयोग करना चाहता था। बेशक, मैं उसकी इस मशा का शिकार नही हुआ, और मुझे इस बात का रत्ती-भर भी अफसोस नही है कि मेरी फीस जो मुझे मिलनी चाहिए थी, नही मिली, क्योकि मेरा यह विश्वास है कि जो मुवक्किल किसी अनुचित उद्देश्य से मेरी फीस अदा नही करता, वह जितना धोखा मुझे देता है, उससे कही ज्यादा अपनेको गुमराह करता है।

अपने मुवक्किलो पर विश्वास करने की निश्चय-संबधी मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि का जिक्र मैंने ऊपर किया है। इससे मेरा मुशी, जो मेरे यहा काम करने से पहले दो वरिष्ठ वकीलो के यहा काम कर चुका था, बडा चिंतित हुआ। रमेश मेरी इस कार्य-प्रणाली का विरोध करता और लगातार आग्रह करता कि पूरी फीस पेशगी लिये बिना किसी भी मुकदमे को हाथ मे नही लेना चाहिए। इतने पर भी मैंने उसकी सद्भावनापूर्ण सलाह की उपेक्षा करने और मानव-स्वभाव पर विश्वास करने की अन्त-प्रेरणा पर निर्भर रहने का अपना नियम बना लिया था।

एक बार की घटना है कि मुझे शहर से बाहर के एक मुकदमे मे जाना पडा, जिसे मेरे मुशी ने कुछ शर्तों पर तय कर लिया था। उसने फीस का कुछ हिस्सा पेशगी ले लिया था और मुवक्किल से यह तय कर लिया था कि बाकी रकम अगले दिन सुबह मेरे अहमदाबाद छोडने से पहले ही दे

दी जायगी। मेरे मुशी ने मुझे करार की शर्ते वतलाते हुए चेताया कि बाकी रकम हाथ मे आये विना मैं अहमदावाद से वाहर न जाऊ। उसके शब्द यह थे, "देखिये, आपका मुवक्किल एक देहाती है, और केवल इसी एक मौके पर आप अपनी फीस उससे सहज ही ले सकते हैं। इसकी वजह यह है कि हम उसकी माली हालत को बिल्कुल नही जानते। (मेरा मुवक्किल एक किसान था, जो धोलका नामक तालुका का रहनेवाला था।)

अगली सुवह मेरा मुवक्किल मुझे स्टेशन पर ले जाने के लिए आया। ज्योही गाडी छूटने को हुई, उसने उसी वक्त फीस की अदायगी के लिए रकम जुटाने के वारे मे अपनी असमर्थता प्रकट की। मैने उसे आश्वस्त किया कि उसे तत्काल फीस की रकम देने के लिए घवराने की जरूरत नही है। चूकि मैं मुकदमा हाथ मे ले चुका हू, इसलिए पैसा मिले या न मिले, इसकी चिता किये विना ही अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार मुकदमे की पैरवी के लिए अधिक-से-अधिक कोशिश करूगा। यद्यपि वह मेरे आश्वासन से खुश तो लगता था, तथापि ऐसे मौको पर वकीलो के आम व्यवहार को ध्यान मे रखते हुए अपने मुकदमे के वारे मे मेरी ईमानदारी पर शकित भी नजर आता था।

हम सुवह दस वजे के करीव धोलका पहुचे और न्यायालय मे हमें दोपहर को पेश होना था। मेरा मुवक्किल मुझे वार-वार यह भरोसा देने की कोशिश कर रहा था कि वह कस्वे मे जाकर वाकी रकम जुटाने की भरसक कोशिश करेगा और यदि किसी भी वजह से इस समय पैसा न मिल सका तो दोपहर वाद की गाड़ी से धोलका छोडने से पहले वह हर हालत मे पैसे का प्रवध कर देगा। मैंने उसे फिर ढाढस दिया कि वह चिन्ता न करे और अपनी सुविधा के अनुसार मेरा हिसाव चुकता कर दे।

लेकिन उसे चैन नही थी, और यहातक कि जब हम वस्तुत अदालत मे थे, उस समय भी उसने फिर से क्षमा मागी और पैसा जुटाने का आश्वासन दिया। न्यायालय के वद होने और मेरे वहा से चलने के बीच इतना थोडा समय था कि वह शायद ही कुछ पैसा जुटा पाता। इसलिए, जब वह

स्टेशन पर मुझे विदा करने आया तो बडा उदास था। उसने माफी मागते हुए वायदा किया कि मेरे अहमदाबाद पहुचने पर वह शीघ्र ही पैसे की व्यवस्था कर देगा।

इस स्थल पर, मुझे यह जरूरी जान पडा कि मैं उसे समझा दू कि वह मेरी फीस चुकाने के लिए न तो किसीसे उधार ले और न अपनी सपत्ति का कोई भाग गिरवी रखे या बेचे। मैंने उसे समझाया था कि यदि मैं अपनी फीस वसूल करने के लिए अपने मुवक्किल की दयनीय हालत बना दूगा तो मै समझता हू कि ऐसा पैसा मुझे सुख-शाति प्रदान नही करेगा। इसलिए वह मेरे लिए स्वय को अथवा अपने परिवार को कष्ट मे डालने की सोचे तक नही। मेरा खयाल है कि मेरे इस प्रकार समझाने से वह आश्वस्त हुआ। साथ ही, उसे सतोष था कि मैने अपनी शक्तिभर उसके मुकदमे की पैरवी की थी। अत मे जो निर्णय हुआ, वह हमारे ही पक्ष मे था।

अहमदाबाद लौटने पर स्वभावत मेरे मुशी ने मेरे इस अव्यावहारिक आचरण पर खूब कहा-सुनी की। मैने मुस्कराते हुए उससे कहा कि स्वार्थ की दृष्टि से मै गलती पर हो सकता हू, लेकिन जब मैने यह खयाल किया था कि यह व्यक्ति सचमुच ही आर्थिक अभाव से पीडित है तो इस बात से भी पूर्णतया बेफिक्र नही था कि वह बेईमान भी साबित हो सकता है। इतना सब होते हुए भी यदि वह ऐसा ही निकले तो हानि मेरे मुवक्किल की होगी। आखिर मेरा तो कुछ पैसो का ही नुकसान होगा, जबकि वह व्यक्ति, जो जान-बूझकर दूसरे को धोखा देता है, अपनी आत्मा का हनन भी तो करता है।

इसमे शक नही कि मेरे मुशी को मेरे सोचने का ढग बिल्कुल नही जचा। उसने कहा कि अपने मुवक्किल से आप कम-से-कम एक बार तकाजा तो करे ही। लेकिन फिर मैने उसके सुझाव पर तर्क किया कि यदि वह आदमी सचमुच ही बेईमान है तो गई हुई रकम के लिए एक डाक टिकिट भी खर्च करने का कोई लाभ नही। इसके विपरीत अगर वह व्यक्ति ईमानदार है तो

फिर तकाजे की कोई आवश्यकता नही। इस वाद-विवाद का अंत यह हुआ कि मुवक्किल से कोई तकाजा नही किया गया।

अतत नतीजा क्या निकला ? मेरे मुशी के आश्चर्य का उस समय ठिकाना न रहा जबकि लगभग दस महीने बाद मेरी फीस की पूरी रकम मनीआर्डर से मुझे मिली और साथ ही एक पत्र मिला, जिसमे देरी के लिए माफी मागी गई थी। यह एक छोटी-सी घटना थी, लेकिन मेरा हृदय गद्गद् हो गया कि एक अपढ, ग्रामीण व्यक्ति अपने नैतिक कर्तव्य के प्रति पूर्ण सचेत और निष्ठावान निकला। ये बाते मुझे अपने देश के भविष्य के बारे मे बडा आशावान बनाती है।

मुझे उस वक्त बडा दुःख होता है, जबकि हम प्राय दूसरो के उद्देश्यो पर अनुचित सदेह करके उन्हे गलत बताते है। हम इतना अविश्वास क्यो करते है ? क्या यह सच नही है, जैसाकि एक बार गाधीजी ने भी कहा था, कि असत्य मे ही सत्य विद्यमान है और मृत्यु मे ही जीवन ? इस छोटी-सी घटना ने मानव-स्वभाव मे मेरे अटल विश्वास को और भी मजबूर कर दिया, यहातक कि मेरा मुशी भी, जो सासारिक मामलो मे अपने-आपको बडा चतुर और व्यावहारिक समझता था, सहज अनुभव कर सका कि मेरा मार्ग मानवीय दृष्टिकोण से नितात व्यावहारिक और सर्वथा उचित था।

: १२ :

न्याय पर असत्य की विजय

मैं नही जानता कि क्यो, लेकिन है यह ठीक, मूल मुकदमे (चाहे दीवानी हो या फौजदारी) करनेवाले वकीलो मे यह विश्वास काफी फैला हुआ है और गहरी जड पकड चुका है कि मुकदमे की कामयाबी के मौके उस हद तक कम हो जाते है, जितना कि सबूत को ठीक-से सवारा हुआ नही होता।

सबूत को 'ठीक-से सवारने' के अतर्गत मुकदमे के साथ अनावश्यक मनगढत बातो का जोडना तथा उससे पूरी तरह सबधित सामग्री अथवा तथ्यो को छिपाकर छोटा करना भी आता है। इसलिए अक्सर लोग आश्चर्य करते रह जाते है कि जो कुछ है, और जो कुछ नही है, वह शत-प्रतिशत बनाया हुआ और सर्वथा झूठ है।

इसी सिलसिले मे मुझे बम्बई राज्य के एक दक्षिणी जिले के मुकदमे का ध्यान आता है, जिसमे मृत पति की वसीयत के अनुसार उसकी विधवा पत्नी द्वारा दत्तक पुत्र ग्रहण करने पर आपत्ति उठाई गई थी। मुझे १९३५ मे इस वसीयत की यथार्थता सिद्ध करनी थी, जो १९०४ मे लिखी गई थी। बात यह थी कि पूरी वसीयत मृत व्यक्ति के अपने हाथ से लिखी थी और उसको प्रमाणित करनेवालो मे केवल एक ही गवाह १९३५ मे जीवित था। मैने उस व्यक्ति से तो पूछताछ की ही, लेकिन साथ ही मृत व्यक्ति की लिखावट को उसीकी लिखावट सिद्ध करने के लिए लगभग दो सौ कागज-पत्र आदि सग्रहीत किये, जो या तो उसके हाथ के लिखे थे या उनपर

उसके हस्ताक्षर थे। इनमे से कुछ तो ऐसे थे, जिनपर किसी भी प्रकार का सदेह या आपत्ति नही की जा सकती थी, क्योकि वे नगर कमेटियों और सरकारी रिकार्डो से प्राप्त किये गए थे।

इन्ही दिनो, जब मैं इस मुकदमे मे व्यस्त था, मेरा एक जूनियर वकील मित्र, जो मुकदमे की कार्यवाही को बडे ध्यान से देखा करता था, मेरे घर आया और जिस ढग से यह मुकदमा चल रहा था उसकी बडी तारीफ की। बातचीत के अत मे उसने एक सकेत किया कि उसकी राय मे मै सच्चाई पर आवश्यकता से अधिक निर्भर कर रहा हू। यदि मैं कुछ ऐसी गवाहिया पेश कर सकू, जो यह कह सके कि यह वसीयत उनके सामने लिखी गई थी और उन्होने मृत व्यक्ति को इस वसीयत को लिखते और उसपर हस्ताक्षर करते देखा था तो मुकदमे मे जीत निश्चित है, अन्यथा विजय बडी सदिग्ध है।

यह दिलचस्प वार्तालाप, जो हम लोगो के बीच हुआ था, इस प्रकार है ·

मैं . लेकिन किसी भी हालत मे ऐसी गवाही पेश नही की जा सकती, (ऐसा कौन व्यक्ति है, जो यह प्रमाणित कर सकता है कि वसीयत लिखने और उसपर हस्ताक्षर करने के समय मैं मौजूद था) क्योकि उनमें से कोई भी इस समय जीवित नही है।

वकील मित्र (भेद-भरी मुस्कान के साथ) ठीक है। लेकिन यह तो बहुत ही छोटी बात है। आप इस कठिनाई पर, किसी ऐसे व्यक्ति को हासिल कर, काबू पा सकते है, जो आपकी मर्जी के मुताबिक गवाही दे सके।

मैं ' यदि उसने मृत व्यक्ति को वसीयत लिखते हुए नही देखा है तो भी ? क्या आपके परामर्श का यह मतलब है कि मैं किसी गवाह से शपथ-पूर्वक वह बात कहलाऊ, जो सरासर झूठ है ? न्याय प्राप्ति के लिए यह रास्ता कहातक उचित है ?

वकील मित्र : यह देखना हमारा काम नही कि गवाह झूठ बोल रहा है या सच। पेश किये गए सबूतो के आधार पर उसका फैसला करना अदालत का काम है। इसलिए मैं आपसे यही अनुरोध करूगा कि आप मेरे

सुभाव के अनुसार कार्य करे।

मैं तो क्या आप यह आशा करते है कि अदालत गवाह की सचाई की जाच किये बिना उसे स्वीकार कर लेगी ?

वकील मित्र हा, यदि आपका गवाह भली-भाति सिखा-पढा दिया गया होगा तो वह किसी भी किस्म की पूछ-ताछ और किसी भी प्रकार के सवालो के सामने खडा रह पायेगा।

मैं लेकिन इस बात की क्या गारटी है कि अदालत ऐसे झूठे लोगो को गवाह स्वीकार कर ही लेगी ?

वकील मित्र ' ये अदालते छल-छिद्रो को देखने मे इतनी निपुण नही होती। उनका काम सिर्फ रिकार्ड पर आई बातो को देखना होता है। (इस बात ने मुझे आश्चर्यचकित कर दिया, क्योकि इस सबध मे मेरा अनुभव इसके बिलकुल विपरीत था।)

मैं खैर, मैं तो बस इतना ही कह सकता हू कि अदालत का काम अदालत जाने। मैं तो अपने मुवक्किल को यही सलाह देता हू कि झूठ बोलकर मुकदमा जीतने के बजाय सच बोलकर उसे हारना कही अच्छा है।

मै यह कहे बिना नही रह सकता कि मेरी इस प्रकार की भावनाओ से मेरे वकील मित्र को बडा धक्का लगा और बाद मे वह इस हद तक बढ गया कि उसने मेरे मुवक्किल को आगाह किया कि उसे इस बात के लिए अफसोस करना पडेगा कि उसने एक 'गाधीवादी वकील' को नियुक्त किया है। जैसाकि स्पष्ट है, उसकी समझ मे यह नही आ रहा था कि मैं अहमदाबाद की कचहरी का एक सफल और सम्मानित वकील क्यो और किस प्रकार हू।

मुझे खेद है कि वह मेरा वकील मित्र इस मामले मे अकेला ही अपवाद नही था। और भी बहुत-से वकील और मुवक्किल अदालतो के वातावरण के विषय मे वैसा ही विश्वास रखते है। मुझे यहा अपने पाठको को यह बताने की आवश्यकता नही कि इस मामले से हमने कैसे पार पाया।

मुझे एक और मुकदमे की याद आती है, और वह मुकदमा सिर्फ इस-

लिए असफल रहा कि इस्तगासे की कहानी मे अनावश्यक झूठ की भरमार थी।

यद्यपि मैने फौजदारी मुकदमे लेना छोड दिया था तथापि एक फौजदारी मुकदमे मे मुझे एक छोटी अदालत मे (प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट के यहा) बहस करने के लिए कहा गया, क्योकि उस मामले का सार्वजनिक महत्व था।

घटना इस तरह थी कि एक पुलिस सब-इस्पेक्टर ने कुछ दूधियो को चावद्री नामक गाव की पुलिस चौकी पर बुलाया। वह उनके खिलाफ लगाये गए छोटे-मोटे जुर्मो की छानबीन करना चाहता था। सब-इस्पेक्टर ने उन्हे बेतो से खूब पीटा और अत मे यह समझौता हुआ कि दूधिये अगर कुछ रकम दे दे तो पुलिस इस मामले को यही दबा देगी।

चूकि यह घटना एक छोटे-से कस्बे मे हुई थी, अत स्वाभाविक रूप से पुलिस की इस नृशसता की खबर गावभर मे फैल गई। दूधियो की स्त्रिया चावद्री आ गई। अत उन्हे बन्धक स्वरूप रखकर पुलिस ने दूधियो को घर जाकर समझौते की रकम की व्यवस्था करने के लिए जाने दिया।

अब यह तो कहना कठिन है कि सब-इस्पेक्टर ने स्त्रियो को पूर्व आयोजित योजना के आधार पर रोका था या दूधियो के चले जाने पर उसके दिमाग मे यह बात अचानक आ गई थी। जो हो, किंतु उन सुन्दर युवतियो को देखकर उसकी काम-वासना भडक उठी। उसने उन सबमे जो सबसे अधिक सुन्दर और जवान थी, उस लडकी को जबरदस्ती पकडा और अपने एक सिपाही की सहायता से उसे चौकी के अन्दर ले जाकर उसके साथ बलात्कार किया।

जब दूधिये रकम लेकर लौटे तो इस घटना से भडक उठे और उन्होंने सब-इन्स्पेक्टर से बदला लेने के लिए उसे लाठियो से खूब पीटा। वह बेहोश होकर गिर पड़ा, उसके खून बहने लगा और दूधियो ने समझा कि वह मर गया। फलत वे जल्दी मे वहा से भाग खड़े हुए, क्योंकि उन्हे डर था कि एक पुलिस अधिकारी की हत्या करने के अपराध में उन्हें गिरफ्तार

कर लिया जायगा।

इस समय तक दूधियो को यह भान हो गया था कि उन्होने गुस्से और उत्तेजना मे जो कुछ कर डाला है, उसका क्या नतीजा हो सकता है। इसलिए वे अपने बचाव की तैयारी मे लग गये। एक सार्वजनिक कार्यकर्ता को इस सम्बन्ध मे निरपेक्ष होकर कार्य करना चाहिए था, किंतु दुर्भाग्य से वह सत्य और नैतिकता के बारे मे बहुत सावधान नही था। उसे तो 'पिशाच सरकार' को बदनाम करने और देश-हित की सिद्धि का मौका मिला था। उसने इस दु खद घटना को लेकर सरकारी एजेट की दुश्चरित्रता से लाभ उठाने का निर्णय किया।

वह दूधियो को लेकर एक तालुका-कस्बे के वकील के पास गया। इस पर वकील, कार्यकर्ता और दूधियो का वह दल तुरत एक दूसरे गाव की ओर रवाना हो गया, जहा डिप्टी कलक्टर का कैप लगा हुआ था। वहा उन्होने सब-इस्पेक्टर के खिलाफ बलात्कार की शिकायत दर्ज कराई। जहा-तक कानून का सबध है, वह बिल्कुल ठीक था। वास्तव मे, यह जरूरी भी था कि इस ढग के मामले को, जिसमे एक पुलिस अधिकारी चरित्रहीन और दोषी था, उच्च-अधिकारियो के सामने पेश किया जाय और सबधित व्यक्ति को दड दिया जाय। जनता को इस बात का भरोसा होना चाहिए कि अधिकारी लोग उसकी रक्षा के लिए है न कि उसके अज्ञान और गरीबी का नाजाइज फायदा उठाकर उसे अपमानित करने के लिए।

लेकिन वकील और कार्यकर्त्ता महोदय एक कदम और आगे बढ गये। उन्होने इस मुकदमे को पूरी तरह मजबूत बनाने के लिए सब-इस्पेक्टर के साथ-साथ उसके सहायक को भी फसाने की योजना बनाई और घटना के विषय मे सच बोलने के बजाय (सच तो यही था कि अकेले सब-इस्पेक्टर ने चौकी के एक कमरे मे अपने एक सहायक पुलिसमेन की सहायता से एक लडकी पर बलात्कार किया था) उन्होने एक अतिरजित चित्र प्रस्तुत किया। उन्होने कहानी गढी कि दो-दो पुलिसवाले एक-एक स्त्री को पकडकर अलग-अलग कमरो मे ले गये और बलात्कार किया। साथ ही, उन्होने पुलिस अफसर

पर लोगो को पीटने और घूस लेने का भी आरोप लगाया। अहमदाबाद के एक वकील पर इस सारे मुकदमे की देखभाल का भार सौपा गया, लेकिन वह भी इस प्रारंभिक अतिरंजना मे कोई सुधार नही कर सका। पासा तो पहले ही फेंका जा चुका था।

दूधिये और उनके परामर्शदाता मेरे पास आये और प्रार्थना की कि मैं इस मुकदमे की पैरवी करू। उन्होने इस मामले की सारी सच्चाई मुझपर जाहिर नही की। वे यही कहते रहे कि उन्होने जो शिकायत की है, वह सच है, बिलकुल सच और उसमे सचाई के अतिरिक्त कुछ भी नही है। मैंने उनकी बात पर विश्वास कर लिया। मुझे यह जानकर बडा धक्का लगा कि जिन अधिकारियो को लोगो की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया है, वे उनके साथ इस प्रकार का व्यवहार करते हैं। अत मैंने दूधियो से बिना कोई फीस लिये यह मुकदमा अपने हाथ मे ले लिया। मैंने अपना कर्तव्य समझा कि मैं मजिस्ट्रेट के सामने उनके मुकदमे की पैरवी करू, क्योकि यह सार्वजनिक जीवन का प्रश्न था, जिसे प्रकाश मे लाया ही जाना चाहिए था।

फर्द जुर्म लगानेवाले मजिस्ट्रेट ने दूधियो की कहानी को स्वीकार नहीं किया और सब-इन्स्पेक्टर को बलात्कार और रिश्वत के आरोप से मुक्त कर दिया। लेकिन उसने उसे हिंसक कार्यवाही के लिए १०० रुपये जुर्माने की सजा दी।

इसके विपरीत पुलिस ने दूधियो पर यह मुकदमा चलाया कि उन्होने एक पुलिस अधिकारी को पीटा और उसके कर्तव्य-पालन मे बाधा डाली। इसके लिए मजिस्ट्रेट ने दूधियो को नौ-नौ महीने के कठोर कारावास की सजा दी।

दूधियो पर लगाये गए आरोपो और उन्हे दिये गए दड के विरुद्ध मैंने अहमदाबाद मे सेशन मे अपील की और साथ ही पुलिस सब-इन्स्पेक्टर को बलात्कार के आरोप से मुक्त करने के विरोध मे एक पुनर्निरीक्षण का आवेदन-पत्र भी पेश किया। चूकि दोनो ही मुकदमे एक ही घटना पर आधारित

थ, अत जो तर्क एक मुकदमे मे इस्तगासा पक्ष के लिए थे, वही दूसरे मुकदमे मे बचाव-पक्ष के लिए। पहले सब-इस्पेक्टर के खिलाफ पुनर्निरीक्षण के आवेदन की सुनवाई होनी थी और बाद मे अपील की।

चूकि मुझे अपने मुकदमे की सचाई पर पूरा विश्वास था और मैं पुलिस सब-इन्स्पेक्टर के आचरण-विषयक वास्तविक दुराचरण तथा मजिस्ट्रेट द्वारा इस मुकदमे मे कमजोरी दिखाने (जैसाकि मैं उस समय समझता था) के कारण आवेश मे था, इसलिए मैंने इस मामले की अपील की पूरी सचाई और ईमानदारी के साथ पैरवी की। यह एक सनसनीखेज मुकदमा था, इसलिए अदालत का कमरा वकीलो और जनता से खचाखच भरा हुआ था। मैंने विवादास्पद मामले की सभावनाओ पर लगभग अढाई घटे बहस की।

जज इडियन सिविल सर्विस का एक अगरेज था। जब मैं बहस कर रहा था तो अदालत मे एकदम शाति थी और यदि चेहरा हृदय का दर्पण है तो श्रोताओ के चेहरो से यह स्पष्ट था कि इस मामले के बारे मे मेरे तर्को से जनता को वही विश्वास हो गया था, जो मेरा था। प्रत्येक व्यक्ति यह जानने के लिए उत्सुक था कि मेरे द्वारा सब-इन्स्पेक्टर पर लगाये गए आरोपो का सरकारी वकील क्या जवाब देता है।

ठीक उसी समय जबकि अदालत मे एकत्र हम सभीके मन मे उत्सुकता का सागर लहरा रहा था, जज ने मुझसे निम्न प्रश्न किया

जज मिस्टर मावलकर, क्या आप गम्भीरतापूर्वक यह कहना चाहते हैं कि एक आदमी ने एक स्त्री के साथ बिना दूसरे की सहायता के बलात्कार किया ?

मैं जी, हा।

जज . मैं इस बात पर विश्वास नही कर सकता।

इसमे कोई शक नही कि चिकित्सा-न्याय-शास्त्र की अधिकृत पुस्तको मे मैं यह पढ चुका था कि किसी एक आदमी के लिए किसी दूसरे की सहायता अथवा स्त्री की मर्जी के बिना बलात्कार करना असभव है। प्रश्न यह है

कि स्त्री चाहे कितनी ही कमजोर हो और पुरुष चाहे कितना ही बलिष्ठ क्यों हो, उस व्यक्ति के लिए यौन-सबधी उस रूप की कोई क्रिया कर सकना सभव नही है, जिसे भारतीय दड-विधि बलात्कार का अपराध ठहराती है। यदि किसी अवस्था मे यह आरोप लगाया गया है कि किसी व्यक्ति ने किसी दूसरे की सहायता के बिना बलात्कार किया है तो यह घटना स्वत सिद्ध है कि यह बलात्कार का मामला नही है, बल्कि सबधित स्त्री की इच्छा से ही ऐसा हुआ है। चूकि मुझे इस बात का ज्ञान था, इसलिए मैने इसकी पैरवी इस प्रकार की

"यह सच है कि पुरातनवादी चिकित्सा-न्याय-शास्त्र की पुस्तके यही कहती है कि किसी अकेले आदमी के लिए बिना सहायता के बलात्कार करना सभव नही हे। ऐसा पश्चिमी देशो मे ठीक हो सकता है, लेकिन हिंदुस्तान की स्थिति दूसरी है। हमारे लोग अपढ़ और अज्ञानी है। ग्रामीण लोग और खास तौर पर स्त्रिया हमारे यहा इतनी आतकित और दबी हुई रहती है कि उनसे किसी भी प्रकार का विरोध करने की आशा की ही नही जा सकती और वह भी ऐसे समय, जबकि हमलावर एक सरकारी अधिकारी हो।"

जज मेरे तर्क को मानने के लिए तैयार नही था। वह बुदबुदाया, "मैं ऐसा नही मानता।" और तत्काल उसने फैसला दिया—'दर्खास्त ना मजूर।' उसने सरकारी वकील से भी जवाब देने के लिए नहीं कहा। मैं ही नहीं, बल्कि अदालत मे खडे सब लोग सन्न रह गये। इतने पर भी न तो मुझे और न अन्य किसीको यह विश्वास हुआ कि अग्रेज जज सरकारी अधिकारी की प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए जान-बूझकर पुलिस का पक्ष ले रहा है।

मेरी अपनी प्रतिक्रिया यह थी—क्योंकि जज अग्रेज है, इसलिए यहा की स्थिति को न समझ सकने के कारण उसने गलत फैसला किया है। उससे भारतीय समाज की परिस्थितियो से परिचित होने की आशा नही की जा सकती और इसी कारण वह इस मुकदमे मे सत्य को नही देख सका और

चिकित्सा-न्याय-शास्त्र की अधिकृत पुस्तक मे लिखी हुई बातो का शिकार हो गया है। इतने पर भी मुझे सतोष था कि मैंने अपनी शक्ति-भर जो सभव था, किया।

जब हम अदालत से अपने दफ्तरो को लौट रहे थे तो अहमदाबाद के एक वकील, जो इस मुकदमे की छोटी अदालत मे पैरवी कर चुके थे, मुझसे बोले, "मि० मावलकर, झूठ की थोडी-सी मिलावट ने सारा खेल चौपट कर दिया।" मुझे बडा धक्का लगा। मुझे इस बात का ख्याल भी नही था कि इस घटना मे कही रत्ती-भर भी झूठ है। इसलिए मैने कहा कि जरा इस बात को और स्पष्ट कीजिये। उन्होने कहा, "सचाई यह है कि केवल एक स्त्री के साथ बलात्कार किया गया था। उसे सब-इस्पेक्टर अपने एक सिपाही की सहायता से घसीटकर कमरे मे ले गया था। बस, इतनी-सी बात थी।"

मुझे बडा गुस्सा आया। मैने उनसे पूछा, "तो फिर आपने यह झूठी कहानी क्यो गढी ? अब तो मुझे लगता है कि मुझे अवश्य ही जज से माफी मागनी चाहिए। आप जो कह रहे है, यदि वह सच है तो उसका अनुमान बिल्कुल ठीक था।'

अहमदाबादी वकील मुझे खेद है, लेकिन शिकायत इसी रूप मे लिखाई गई थी, जिस रूप मे वह इस समय मुकदमे मे दर्ज है, और यह बात मेरे हाथ मे मुकदमा आने से बहुत पहले की है।

मैं ठीक है। मैं आपकी बात मानता हू। लेकिन चूकि अब मुझे सत्य का पता चल चुका है, इसलिए मेरे लिए यह सभव नही कि मैं पूरी ईमानदारी और शक्ति के साथ दूधियो के बचाव की अपील की पैरवी कर सकू। अत पैरवी के लिए मेरी जगह किसी दूसरे वकील को तय कर लेना उचित है।

और आजतक मेरी समझ मे यह नही आया कि सार्वजनिक कार्यकर्ता और साथ-ही-साथ उस वकील ने, जिसने सबसे पहले उसे सलाह दी थी, सच्ची घटना को इस प्रकार तोडने-मरोडने की कोशिश क्यो की। इसका

परिणाम यह हुआ कि न केवल न्याय की पराजय हुई, अपितु एक गलत विचार बन गया कि लोग अधिकारियो के विरुद्ध झूठे आरोप लगाते है, और इस प्रकार की शरारत सार्वजनिक कार्यकर्ताओ द्वारा उकसाई जाती है।

१३

विवेक बनाम कानून

अहमदाबाद की कपडा मिलो के मैनेजिंग एजेंटो मे एक आम रिवाज है कि वे मैनेजिंग एजेंट नियुक्त होते समय कपनी की अर्थ-व्यवस्था की सारी जिम्मेदारी अपने ऊपर ले लेते है, और इसके बदले मे उन्हे मुआवजा भी मिलता है। वहा कपनी के निर्माण की सामान्य योजना मे इसके स्पष्टीकरण से जाहिर होता है कि कपनी अपेक्षाकृत छोटी पूजी से रजिस्टर करा ली जाती है और पूजीगत खर्चों तथा कार्यकारी पूजी के लिए आवश्यक कार्य-प्रबंध अमानतो और कर्जों से किया जाता है।

जैसीकि आशा करनी चाहिए, ज्यो-ज्यो कारोबार मे लाभ होने लगता है त्यो-त्यो कपनी के कर्जों मे भी कमी होने लगती है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप हिस्सेदारो की लागत-पूजी का मूल्य इस कारण बढने लगता है कि मूल-पूजी तो थोडी थी और हिस्सो पर मिलनेवाले लाभाश की प्रतिशत दर ऊची।

चूकि इस सारी योजना की कामयाबी मैनेजिंग एजेंट की कारोबारी साख पर निर्भर करती है, इसलिए स्वभावत उनकी स्थिति महत्वपूर्ण होती है। इतना ही नही, कपनी के सारे कर्जों के लिए भी अक्सर वही जाती तौर पर जिम्मेदार होता है। इस प्रकार की एक विस्तृत कारोबार-वाली मशहूर [illegible] मिल की कपनी को १९[illegible]४ मे अहमदाबाद की जिला अदालत ने बद करने का हुक्म दिया, क्योकि मैनेजिंग एजेंट उस कपनी को

चलाने के लिए आवश्यक रकम जुटाने मे असमर्थ थे। पता लगा कि वे शेयर-वाजार के सटोरिये थे और नतीजा यह हुआ कि अपने शेयर के कारोवार के लिए उन्हे वडी-वडी रकमे उधार लेने के लिए मजबूर होना पडा। कपनी की माख का उपयोग करना उनके हाथ मे था और मैनेजिंग एजेंट होने के नाते वे कपनी के चालू खाते का निजी लाभ के लिए उपयोग कर सकते थे और अपने दूसरे कारोबारो के लिए जितना रुपया चाहे, निकाल सकते थे।

यह तरीका न केवल अनुचित है, वल्कि कानून के भी खिलाफ है, क्योंकि भोली जनता तो कपनी को अपना रुपया कपनी की, असली सपत्ति, उसके सालाना लाभाश और मैनेजिग एजेंट की साख के आधार पर देती है।

१९२४ से पूर्व कुछ वर्षों मे मैनेजिग एजेंटो को सट्टेबाजी मे वडा भारी नुकसान हुआ था और इस कारण उन्होने कपनी के खाते में से वडी-वडी रकमे निकाल ली थी। इसके लिए उन्होने तरीका यह अपनाया कि कपनी के लिए अमानते मजूर करते, इस उधारी के सबध मे कपनी की ओर से अमानती रसीदे जारी करते और उसके वाद अपने चालू खाते के जरिये निजी तौर पर उस रुपये का इस्तेमाल करते। कपनी के वद होने से कुछ ही दिन पूर्व कुछेक ऐसी रकमो की अमानती रसीदे जारी की गई थी, जिन्हे एजेंटो ने नया-नया उधार लिया था अथवा एजेंटो के प्रबध मे चलनेवाले व्यवसायो और सगठनो से प्राप्त ऐसी अमानतो के सबध मे थीं, जिनका भुगतान वाजिव हो चुका था।

कपनी को दिवालिया करार देने की दरख्वास्त के समय तक मैनेजिग एजेंटो की डगमगाती साख का लोगो को पता लग चुका था और उससे उनमे बेचैनी भी थी। लोगो को यह भी पता चल चुका था कि मैनेजिग एजेंट कपनी का धन अपने कर्जों के भुगतान मे लगाकर उनके द्वारा प्रदत्त विश्वास का दुरुपयोग कर रहे हैं।

जब कपनी को दिवालिया करार देने की कार्रवाई चल रही थी,

सरकारी दिवाला-अफसर ने नई अमानती रसीदो-सबधी इन कर्जो की जिम्मेदारी पर एतराज किया। उसका कहना था कि ये रसीदें गैर-कानूनी है, क्योकि एजेंटो ने उनका उपयोग अपने निजी उपयोग के लिए किया है और इनकी प्राप्ति से कपनी को कोई भी लाभ नही हुआ। इसलिए दिवाला-अफसर ने सबधित पक्षो की राय से यह मामला पच-फैसले के लिए अहमदाबाद के जिला जज को सौप दिया, जिससे कि मामला जल्दी निपटाया जा सके और अपीलो मे वक्त जाया न हो।

मै दावेदारो की ओर से ऐसे तीन मामलो मे पेश था। एक का १८,००० रु० का मामला था, दूसरे का ७००० रु० का और तीसरे का २००० रु० का। दिन के प्रकाश की तरह यह सर्वथा स्पष्ट था कि कानूनी दृष्टि से मेरे मुवक्किलो की रक्षा का कोई आधार नही था। जिला-जज कानूनी तौर पर इन मामलो की सुनवाई करता तो इस बात की पूरा आशा थी कि मेरे मुवक्किल न सिर्फ मुकदमा हार जाते, बल्कि उन्हे मुकदमे तथा दिवाला-अफसर का भारी खर्च भी उठाना पडता।

मैं यहा यह भी बतला देना चाहता हू कि अन्य मुकदमो की अपेक्षा दिवालिया करार देनेवाले मुकदमो मे बहुत ज्यादा खर्चा पडता है। वह वकीलो आदि को आमतौर पर दिये जानेवाले खर्चे के अनुसार नही होता। ऐसे मामलो मे अग्रेजी ढग पर आधारित और बम्बई हाईकोर्ट के नियमो और उपनियमो के अनुसार मुवक्किल और वकीलो के बीच फीस का खास किस्म का स्तर तय कर दिया जाता है।

फिर भी मैने इन मामलो को इस आशा से अपने हाथ मे ले लिया था कि हम किसी-न-किसी समझौते पर पहुचने मे सफल हो जायगे और हमे दिवाला-अफसर से कुछ सुविधाए भी मिल जायगी। कानून के मुताबिक, इसमे कोई शक नही था, कि मेरे मुवक्किल अपनी मेहनत की कमाई से हाथ धो बैठते।

२००० रु० देनेवाला आदमी मैनेजिंग एजेंटो का खजाची था और पिछले १५-२० साल की उसकी यह गाढी कमाई थी। ७००० रु० देनेवाला

व्यक्ति एक सरकारी नौकर था, जो अहमदाबाद से बहुत दूर किसी जगह नौकरी करता था। उसने अपनी यह रकम कई सालो से मैनेजिंग एजेंटो की कपनी मे लगाने की इजाजत दे दी थी। १८,००० रु० वाला तीसरा मामला नकद अदायगी का था। यह रकम कपनी बद होने के कुछ ही मास पूर्व एजेंटो को बिल्कुल खत्म होने से बचाने के लिए दी गई थी। यह रकम देनेवाले का खयाल था कि वह कपनी को रुपया दे रहा है, न कि निजी तौर पर एजेंटो को।

खजाचीवाले मामले मे दिवाला-अफसर का यह कहना था कि खजाची होने के नाते उसे मैनेजिंग एजेंटो की स्थिति की पूरी-पूरी जानकारी थी। सरकारी नौकर के मामले के बारे मे उसका कहना था कि एक से दूसरी कपनी मे रुपये का परिवर्तन इस जालसाजी का नतीजा है कि दूसरे अमानतदारो के मुकाबिले उसे प्राथमिकता मिले। तीसरे मामले मे उसका कहना था कि यह स्पष्ट है कि उसने रुपया एजेंटो को लाभ पहुचाने के लिए दिया था, न कि कपनी को।

किस्मत से मेरे हाथ एक ऐसा मौका आ गया, जिसे ईश्वरी देन कहना चाहिए। जिला-जज एक अग्रेज आई० सी० एस० अफसर था, जो थोडे दिनो की छुट्टी पर इग्लैड जा रहा था और वह कपनी के बद करने के मामले को जल्दी ही निपटा देना चाहता था। इसलिए उसने दिवाला-अफसर को यह सुझाव दिया कि यदि वह और इसमे सबधित पक्ष के लोग सहमत हो तो वह इन मामलो का फैसला जज की हैसियत से नही, बल्कि पच-फैसले के तौर पर कर देगा। इस तरीके को अपनाने का नुकसान यह था कि पच-फैसले के रूप मे जज के फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट मे अपील नही की जा सकती थी और उन मामलो का हमेशा के लिए यही अत हो जाता।

जब पच-फैसले का यह सुझाव मेरे सामने आया तो मैने मौके का लाभ उठाते हुए अपने मुवक्किलो को निःसकोच भाव से इस सुझाव को स्वीकार कर लेने की सलाह दी। इसका कारण स्पष्ट था। कानूनी निगाह से मुक-दमा लड़ने लायक उनमें कोई सार नही था और यह भी मुमकिन था कि

न केवल हम अपनी रकमो से ही हाथ धो बैठेंगे, अपितु एक भारी खर्चे के नीचे भी आ जायगे। मेरे मुवक्किलो को मुझपर विश्वास था। उन्होने मेरी सलाह मान ली और हमने पच-फैसले के लिए मजूरी दे दी।

इसी प्रकार का एक और मुकदमा, जिसमे पचास हजार रुपये का मामला था, इन्ही दिनो मुझसे काफी वरिष्ठ एक वकील के हाथ मे था। अपने मामलो मे पच-फैसले के सुझाव को स्वीकार करने से पहले मुझे उनसे सलाह-मशविरा करने का मौका हुआ। मेरे वरिष्ठ मित्र इस बात से बडे चिंतित हुए कि यदि पच-फैसला उनके मुवक्किल के खिलाफ गया, जिसकी कि पूरी सभावना भी है, तो उस फैसले के खिलाफ हाईकोर्ट मे अपील के अधिकार को भी वह खो बैठेगा। मेरा विचार था कि जब कानूनी तौर पर हमारा हारना निश्चित है तो फिर क्यो न हम मुवक्किलो को मिलनेवाले इस अवसर का लाभ उठाये और पच-फैसले के रूप मे काम करनेवाले जज से विवेक और न्याय के नाम पर विचार करने की प्रार्थना करे ? यदि हम यहा हार भी जाते है तो भी हमारे मुवक्किल आगे की अपीलो आदि के खर्चे से बच जायगे, क्योकि वहा भी जीत जाने की कोई उम्मीद नही।

लेकिन मेरे वरिष्ठ मित्र अपील करने के अधिकार को हाथ से न जाने देने के लिए अधिक चिंतित जान पडते थे और उन्हे इस बात से कोई मतलब नही था कि नतीजा क्या होता है, अर्थात् मुवक्किल को अतत लाभ होता है या हानि। वह पच-फैसले के विचार के खिलाफ थे।

अचानक एक दिन मेरे तीनो मुवक्किलो के मामलो की पच-फैसले की पेशी हुई और तीन घटे की बहस के बाद जज ने मुझसे पूछा कि क्यो न तुम्हारे मुवक्किलो से दिवाला-अफसर का खर्चा दिलाया जाय ? इसका साफ मतलब था कि हमारे मामलो को खर्चेसहित खारिज कर दिया जायगा। मैंने जो तर्क पेश किये थे, वे कानून की बजाय कही ज्यादा विवेक से ही सबधित थे।

खजाची के बारे मे मेरा तर्क था कि यदि यह मान भी लिया जाय कि जो कुछ हुआ उसकी उसे पूरी जानकारी थी और यहातक कि उसे

मैनेजिग एजेटो की स्थिति का भी मान था, तो भी हमे उसके गुणो और ईमानदारी की प्रगसा करनी चाहिए। उसने तब भी अपनी २००० रुपये की छोटी रकम नही निकाल ली, जबकि वह अपने मालिको की ओर से प्रति-दिन हजारो रुपयो का जमा-भुगतान कर रहा था। उसकी ईमानदारी और स्वामी-भक्ति की यह सजा बहुत ही कठोर है।

सरकारी नौकर के बारे मे मेरा तर्क था कि मैनेजिग एजेटो की देख-रेख मे चलनेवाली कई कपनियो की सही-सही माली हालत की जानकारी रखने की उससे आगा नही की जा सकती। हमे उसकी इस बात पर विश्वास करना चाहिए कि उसकी रकम किस कपनी मे रहती है। इससे उसे कोई फर्क नही पडता, क्योकि वह उसे हर साल नये सिरे से जमा करा लेता था और उससे मैनेजिग एजेटो पर विश्वास था। आखिरकार वह रकम थी तो किसी-न-किसी ऐसी ही कपनी मे, जोकि उन्ही मैनेजिग एजेटो की देख-रेख मे चलती थी। उससे यह उम्मीद करना कि वह इन सभी कपनियो की माली हालत के बारे मे जागरूक रहे और एक के खिलाफ दूसरी को जान-बूझकर प्राथमिता दे तो यह एक ऐसे आदमी मे सूक्ष्म व्यावसायिक बुद्धि की अपेक्षा करना है, जिसका व्यापारिक जगत से कोई सबध नही। इसके अलावा उसे एक ऐसे जुर्म मे सजा दी जा रही है, जो उसने नही किया।

आखिरी मामले के बारे मे मेरा तर्क था कि मेरे मुवक्किल का मैनेजिग एजेटो को रुपया देने से इकार करना, कपनी को रुपया देने के लिए तैयार हो जाना, उसका कानून न जानने का सूचक है और यद्यपि कानून की अज्ञानता कोई कारण नहीं है, तथापि एक सच्ची गलतफहमी के लिए १८,००० रु० का दड बहुत ही कडा है। उसका थोडा-बहुत ख्याल अवश्य किया जाना चाहिए।

जब मैं अपने मामले की बहस समाप्त कर चुका तो वरिष्ठ वकील ने, जो शुरू मे ही पच-फैसले के खिलाफ थे, महसूस किया कि एक बात मे वह मुझसे जीत गये है। वह बोले, "देखो मावलकर, तुम्हे क्या मिला? तुमने अपने हाथ से अपील का मौका भी खो दिया।' मैंने उनका उत्तर

दिया, "मै मानता हू कि पत्यक्ष रूप से मैने कुछ भी नही पाया, लेकिन परोक्ष रूप से मैंने अपील आदि के भावी बोझ से अपने मुवक्किलो को बचा लिया है। फिर भी मेरा विचार है कि मै जज मे मिलूगा और इस मामले मे विवेक और सहानुभूति से विचार करने की सिफारिश करूगा।"

इसके बाद मै जज के कमरे मे गया और कहा, "श्रीमन्, इन मामलो के बारे मे आपके विचार से मुझे बडा धक्का लगा है।"

न्यायाधीश क्यो ?

मैं "यदि मुझे स्वप्न मे भी इस बात की शका होती कि आप न्याय और विवेक की दृष्टि से विचार किये बिना महज कानूनी कार्यवाही ही करेगे तो मै आपको जज के स्थान पर, जहा आप है, पच-फैसला करनेवाले के रूप मे कभी स्वीकार न करता। इसमे तो कोई बुद्धिमत्ता की बात नही थी कि हम पच-फैसला स्वीकार कर ले और मुवक्किलो द्वारा भविष्य मे की जानेवाली अपील का भी दरवाजा बद कर ले।

जज मि० मावलकर, १८,००० रु० देनेवाले अपने मुवक्किल का ही मामला लो। क्या यह उसकी एकदम मूर्खता नही थी कि उसने इस प्रकार रुपया दे दिया ?

मै मै आपकी बात मानता हू, यह ठीक हैं। लेकिन सवाल तो यह है कि इस प्रकार की मूर्खता का उचित दड क्या है ? क्या उसे सारी रकम से हाथ धोना पडेगा ? और क्या आप मुझे सरकारी नौकर और खजाची की मूर्खता भी बता सकते है, जिससे कि उन्हे दोषी ठहराया गया है।

जज (कुछ सोचते हुए) लेकिन क्या आप गभीरतापूर्वक यह कहना चाहते है कि मुझे कानून की शर्तो की उपेक्षा करते हुए विवेक के बल पर ही पच-फैसला देने का अधिकार है ?

मै आप पच-फैसला करने की हैसियत से खुद ही उस कानून को बनानेवाले होगे, जिसपर आपका फैसला आधारित होगा। जज के हाथ-पाव बधे होते है, लेकिन पच-फैसला देनेवाले के नही। पच-फैसला देनेवाला विवेक और न्याय के आधार पर किसी भी रूप मे विचार करने

को स्वतन्त्र है। हम उससे सकीर्ण दृष्टिकोण और महज कानून के नियमो मे वधे रहने की आशा नही करते।

जज इस प्रस्ताव के पक्ष मे क्या आप कोई अधिकृत मिसाल दे सकते है ?

मैने इस बात का वायदा किया। अगले दिन मै सबद्ध निर्देश और मिसाले लेकर उनके पास पहुच गया। जज उनसे पूर्णतया सतुष्ट हो गया।

थोडे ही दिन बाद फैसला भी सुना दिया गया। सरकारी नौकर का दावा तो पूरा-का-पूरा मजूर कर लिया गया और खजाची तथा तीसरे मुवक्किल के दावे ५० प्रतिशत के मजूर हुए। खर्चो के बारे मे कोई आदेश नही दिया गया, जिसका मतलब था कि प्रत्येक पक्ष अपना खर्चा खुद उठाये।

इस खबर को सुनकर मेरी और मेरे मुवक्किलो की खुशी और सतोष का ठिकाना न रहा। वरिष्ठ वकील को, जैसीकि आशा थी, बडा आश्चर्य हुआ। उन्होने स्वप्न मे भी नही सोचा था कि मेरी इस प्रकार की पैरवी का अभीप्ट फल मिलेगा। वस्तुत हमारी सफलता का राज इस बात मे था कि हमने साफगोई के साथ असलियत को मजूर किया और इसानियत के आधार पर जज के सामने अपने नुक्ते पेश किये।

यहा मै अपने मामलो के सुपरिणाम और वरिष्ठ वकील द्वारा पैरवी किये गए उस मुकदमे की तुलना करना चाहता हू, जिसमे ५०,००० रुपये का मामला लटका हुआ था। उनका मुकदमा दूसरे जज के सामने पेश हुआ। उन्होने घोर परिश्रम के साथ चार दिन तक अदालत मे बहस की। वस्तुत इस मुकदमे के लिए खास तौर पर बबई के एक प्रमुख वकील—कायदे आजम श्री मुहम्मद अली जिन्ना, जोकि हमारे राष्ट्रीय आदोलन के एक प्रमुख नेता थे, अदालत मे हाजिर हुए थे।

अन्तत मुकदमा खर्चेसहित खारिज कर दिया गया। मुवक्किल को न केवल ५०,००० रुपये से ही हाथ धोना पडा, अपितु उसे अपना और दिवाला-अफसर का लगभग १५ हजार रुपये का खर्चा भी उठाना पडा।

कानून के नियमो का मतलब इतना ही है कि उनके द्वारा समाज को

विनाशकारी तत्वो से बचाया जाय, लेकिन कानून से सबधित होते हुए भी हम मानवीय कमजोरियो को सहानुभूतिपूर्वक देखने की आवश्यकता की उपेक्षा नही कर सकते । हर मामले को उसके हर पहलू और खासकर इसानी पहलू से देखना और उसीके अनुसार उसका फैसला करना चाहिए। हमे यह नही भूलना चाहिए कि हर मामले को उसीके तथ्यो के आधार पर जाचना चाहिए और यह भी कि कानून के हर नियम का कोई-न-कोई अपवाद होता है ।

: १४ :

नीति के रूप में सत्य का प्रयोग

ऐसे वकीलो और एडवोकेटो की काफी वडी तादाद है, जो यह गलत धारणा बनाये बैठे है कि सीधी सादी सचाई से, जो सामान्य असगतियों के स्पष्टीकरण के लिए अनावश्यक गुत्थियो को छिन्न-भिन्न कर देती है, मुवक्किल का मकसद हल नही होता।

जीवन मे सिद्धात के खयाल से सचाई पर दृढ रहने के अलावा भी मैं निश्चित विश्वास के साथ कह सकता हू कि सचाई को नीति के रूप मे ही चाहे ग्रहण किया जाय, लेकिन असलियत यह है कि उसीके कारण वड़े-वड़े लाभ होते है। कुछ ऐसे अपवादो की भी कल्पना की जा सकती है, जिनमे आधे सत्य अथवा चतुराई मे चुप्पी साधकर झूठ का सहारा लेना सहायक हुआ हो। लेकिन ९९ प्रतिशत मुकदमो मे केवल सचाई के ही वल पर सफलता प्राप्त होती है।

इस तथ्य का एक वहुत व्यापक और महत्वपूर्ण परिणाम यह होता है कि समाज के नैतिक स्तर वने रहते है, जो वास्तव मे उनकी सभ्यता और प्रगति के आधार हैं। इन वातो की पुष्टि के लिए मैं कुछ उदाहरण प्रस्तुत करना चाहूगा।

जैसाकि मैं पहले भी कह चुका हू, हत्या के मुकदमो मे 'गरीब वकील' की हैसियत से पैरवी करने की वात मुझे जचती नही। यदि मुलजिम को सजा हो जाती है तो उसकी जान पर आ वनती है। इस वात का विचार

ही मुझे व्यथित कर देता था, क्योंकि मेरी ओर से कितनी भी सद्भावना के रहते हुए ज़रा-सी असावधानी अथवा गलत ढग से मुकदमे को चलाने से कुछ-का-कुछ हो सकता है।

मैं यह मानता हू कि अपने वकालती जीवन के प्रारभिक दिनो मे मेरी यह अनिच्छा भावुकता पर आधारित थी, न कि झूठ के समर्थन के प्रति घृणा पर। मै तो इसी बात से घबराता था कि कोई भी ऐसा अपराधी, जिसके मेरे साथ सबध रहे हो, मुकदमे के अत मे फासी पर लटका दिया जाय। फिर भी एक नया वकील होने के नाते मुझे कभी-कभी जज के कहने पर फौजदारी मुकदमो मे बचाव पक्ष की ओर से पैरवी करनी पडती थी।

एक बार ऐसा हुआ कि हत्या के ऐसे ही मुकदमे मे इत्तिफाक़ से अपराधी वही आदमी था, जिसे मै १६१४ मे द्वि-विवाह या मेरे मुवक्किल की बीवी को फुसलाने के अपराध मे सजा करा चुका था। सजा काटकर लौटने पर वह उस स्त्री से बडा नाराज था, क्योंकि अब वह उसकी ओर आख उठाकर भी नही देखती थी। उसके दु ख और क्षोभ का कारण, जोकि उसके अपने मुताबिक सही था, यह था कि जिस औरत के प्यार के लिए उसने तीन महीने की जेल काटी और सारे कष्ट सहे, वह आज इतनी बेवफा हो गई है। इसलिए उसने इस 'बेवफा' औरत से बदला लेने की योजना बनाई।

वह स्त्री को मारने के लिए घात मे बैठा रहा और जब वह खेत से तग और झाडियोदार रास्ते पर होकर लौट रही थी तो उसने उसपर एक बडे चाकू से वहशियाना हमला किया, जिससे स्त्री की अतडिया कट गई। उसकी फौरन वही मृत्यु हो गई। हत्या के अपराध मे उसपर मुकदमा चला। वास्तव मे किसी भी प्रकार का कोई बचाव सभव ही नही था, यहातक कि दया की भीख मागने का भी कोई आधार नही था। अगर थोडी-बहुत उम्मीद थी तो वह मामले को साबित करने मे इस्तगासे की ओर से दी गई गवाहियो मे कमजोरी थी। यह स्पष्ट था कि यदि हत्या का अपराध सिद्ध हो गया तो उसे निश्चित रूप से मौत की सजा मिलेगी।

जब मुकदमा मुझे सौंपा गया तो मैं बडा बेचैन हुआ। मेरी समझ मे ही नही आ रहा था कि क्या करू । यद्यपि समय बहुत कम था, तथापि मैंने यह उचित नही समझा कि मै बीमारी अथवा पहले से व्यस्त रहने का बहाना बनाकर उसे टाल दू । मैंने बचाव के तरीको और उनके नतीजो के बारे मे बहुत सोचा। चूकि मुकदमे मे मौत की सजा की गुजाइश थी, इसलिए मै अपराध को मान लेने को भी तैयार नही था। न मै इस बात से इकार कर सकता था कि अपराधी हत्या-स्थल पर मौजूद नही था, और न एक झूठी बात के लिए झूठी गवाहिया गढने को जी चाह रहा था। मेरी समझ मे एक ही बात आ रही थी कि क्यो न कानून का लाभ उठाया जाय। ऐसे मामलो मे जुर्म साबित करने का भार इस्तगासे पर होता है। इसलिए मैंने तय किया कि मै बचाव की ओर से तबतक कोई योजना नही बनाऊगा जबतक इस्तगासे की गवाहियो का जायजा न ले लू ।

सरकारी वकील एक वरिष्ठ सज्जन थे, जो मुझे 'बेबी' कहकर पुकारा करते थे। वह बहुत ही कृपालु और स्नेही व्यक्ति थे। पर साथ ही, वह एकाएक उत्तेजित हो जानेवाले और रूखे तथा दभी स्वभाव के थे। उनमे अपनी योग्यता, प्रभाव और महत्ता के कारण घमड भी काफी मात्रा मे था।

जज अपने कमरे मे अदालत मे आने ही को थे कि सरकारी वकील मुझसे बोले, "बेबी, तुम्हारे मुवक्किल के लिए अपराध और मृत्यु-दड से बचने की रत्ती-भर भी कही कोई गुजायश नही है। तुम उसे यह सलाह क्यो नही देते कि वह अपने अपराध को स्वीकार कर ले और उसने जो कुछ किया है, उसका नतीजा भोगे।"

मैंने जवाब दिया, "मैं अधेरे मे क्यो इस तरह छलाग लगाऊ ? जरा देखू तो सही कि इस्तगासा किस प्रकार जुर्म साबित करता है। यदि इस्तगासा जुर्म साबित करने मे कामयाब नही हुआ तो मुझे कोई आश्चर्य नही होगा।"

मैंने यह बात बडे आत्म-विश्वास के साथ कही थी। मैं यह जानता था

कि शुरू मे सरकारी वकील चाहे मुझपर कितना ही बिगडेगे, लेकिन अत मे मेरी सहायता ही करेगे क्योकि साधारणतया उनका स्वभाव बहुत ही स्नेहशील था और खासकर मेरे लिए तो उनके दिल मे बडी जगह थी।

मेरा जवाब सुनकर वह एकदम तमककर बोले "बेवकूफ! तुम नौजवानो मे सूझ-बूझ का तो नाम-निशान नही है। तुम तर्क के बारे मे बिल्कुल कुछ नही जानते। अच्छी बात है, तुम खुश हो लो। अपने मुवक्किल को फासी पर लटकने दो। तभी तुम्हे अपनी गलती महसूस होगी।" मै चुप रहा। मैं वक्त को टाल रहा था। आखिर मौका आ ही गया।

सरकारी वकील ने अपना मामला पेश किया। गवाहिया पेश करने से पहले, जैसी मुझे आशा थी, उसने जज से कहा, "श्रीमन्, मै दूसरे पक्ष के अपने युवक वकील-मित्र से पहले ही कह चुका हू कि वह अपने मुवक्किल को अपराध स्वीकार कर लेने की सलाह दे और मिनटो मे मुकदमा खत्म करा दे। लेकिन लगता है कि किन्ही कारणो से उन्हे मेरी सलाह पसद नही आई।" इसपर जज ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से मेरी ओर देखा। मैने उत्तर दिया, "श्रीमन्, मेरा दिल भला यह कैसे चाह सकता है कि मै अपने मुवक्किल को अपराध स्वीकार करने की सलाह दू, जैसाकि मेरे वरिष्ट वकील-मित्र चाहते है? मै ऐसा वकील कभी नही हो सकता, जो यह चाहे कि उसके मुवक्किल को उसके अपराध स्वीकार करने के कारण ही फासी के तख्ते पर चढा दिया जाय और अतत यदि उसे मृत्यु-दड मिलना ही है, फिर तो इस्तगासे को उसका वह जुर्म तो साबित करना ही चाहिए, जिसका उसे यह नतीजा मिलेगा।

जज लेकिन मान लो कि उसे मौत की सजा नही मिलती, तब तुम क्या कहोगे?

मै (एक क्षण रुककर) लेकिन श्रीमन्, इसके विकल्प मे निश्चित रूप से उसे उम्र-कैद का दड दिया जायगा, पूरे बीस साल का। इसका विचार भी बहुत भयानक है। हा, यदि इस दड मे जहातक उचित है, कमी कर दी जाय तो मैं इस प्रस्ताव के बारे मे कुछ सोच सकता हू।

जज ने मुस्कराकर सरकारी वकील की तरफ देखा।

सरकारी वकील तो लीजिये मेरा मित्र ही खुश हो ले। यदि अदालत उसे आधी सजा अर्थात् दस साल की कैद की सजा देगी तो मुझे कोई आपत्ति न होगी।

जज (मुझसे) अच्छा मि० मावलकर, अब तुम्हे क्या कहना है?

घटनाक्रम के इस तरह बदल जाने से सचमुच ही मुझे बडी खुशी हुई। मैं लपककर कटघरे मे खडे कैदी के पास गया और उसे अबतक जो कुछ हुआ था, समझाया और साथ ही उसे अपराध स्वीकार कर लेने का फायदा भी बताया। मैंने दृढता के साथ उसे सलाह दी कि वह अपना जुर्म कबूल ले। उसने तत्काल मेरी बात मान ली, हालांकि इससे पहले के मुकदमे मे मैं उसके विपक्ष का वकील रह चुका था।

अपराधी ने जुर्म कबूल कर लिया और उसे दस वर्ष की कैद का दंड दिया गया। यह मेरे लिए प्रसन्नता का क्षण था। मैं बचाव के तरीके सोचने और पशोपेश मे पडे रहने के झमेले से बच गया। साथ ही, मुझे इस बात का संतोष था कि न्याय के असली उद्देश्य की पूर्ति हुई। अपराधी ने खुद ही कानून द्वारा प्रदत्त दंड को ग्रहण कर लिया। जब मैं इस घटना पर विचार करता हू तो मुझे लगता है कि यह उसकी भलमनसाहत थी कि उसने सलाहकार के तौर पर मुझपर विश्वास किया।

एक दूसरा मुकदमा, जिसका मैं यहा जिक्र करना चाहता हू, दीवानी का था। मेरा मुवक्किल बडा भारी सटोरिया था। उसे एक साल में लगभग १,२०,००० रु० का लाभ हुआ था, जिसके आय-कर का उसे भुगतान करना था। लेकिन दुर्भाग्यवश साल के अंतिम दो-तीन महीनो मे वह आधी रकम गवा चुका था और आय-कर नियम के अनुसार उसे पहले साल के मुनाफे पर आय-कर देना पड रहा था। दरअसल कानून के मुताबिक बाद मे हुए नुकसान को ध्यान मे नही रखा जा सकता था।

अनुमानित आय का हिसाब भरते समय मेरे मुवक्किल ने अपनी आय बेहूदा ढंग से कम करके कुल १५०० रु० बताई थी। साथ ही, उसने यह

भी लिख दिया कि उसने इसका कोई हिसाब-किताब नही रखा। उसके विरोधियो की दरखास्त के आधार पर आय-कर अधिकारियो ने सारे मामले की जाच की और इस नतीजे पर पहुचे कि उसने जो हिसाब दिया है, वह एकदम झूठा था, और दरअसल उसने बहुत मुनाफा कमाया था। इसलिए उन्होने उसपर पहले लगाये गए आय-कर मे सुधार किया और चूकि हिसाब-किताब तो था ही नही और सब-कुछ कल्पना तथा अनुमानो पर आधारित था, इसलिए बढा-चढाकर ही लगाया गया था। उससे आय-कर के रूप मे २५ हजार रुपये देने को कहा गया। इसके अलावा उसके खिलाफ झूठा हिसाब देने का भी इलजाम था।

वह मुवक्किल मेरे साथ काम करनेवाले सहायक वकील का रिश्तेदार था। इसलिए सहायक वकील ने मुझपर जोर डाला कि मै इस मुकदमे की अपील के काम को अपने हाथ मे लू। यह तो साफ ही था कि इस मुकदमे मे कोई भी ऐसी कानूनी बात नही थी, जिसके आधार पर आय-कर मे फिर से कोई सशोधन हो पाता। यद्यपि जितना रुपया उससे आय-कर के रूप मे देने के लिए कहा गया था, वह बहुत ज्यादा था, तथापि उसमे सशोधन की कोई आशा नही थी। मैंने अपने वकील-मित्र से कहा कि मै इसमे कुछ नही कर सकता। "मै इस मामले मे क्या कर सकता हू ?" मैने उससे पूछा, "धन्वन्तरि भी मुर्दे मे प्राण नही फूक सकता। कम-से-कम रोगी मे जीवन का एक कण तो होना ही चाहिए, जिससे उसका इलाज करके उसे स्वस्थ किया जा सके।" यद्यपि वह मुझसे सहमत था, तथापि उसका आग्रह था कि मैं इस मुकदमे को अपने हाथ मे ले लू।

मैंने सारे मामले पर खूब सोच-विचार किया और अपने सहायक वकील से कहा कि मै आपके रिश्तेदार के मुकदमे की पैरवी इसी शर्त पर कर सकता हू कि वह 'सत्य, पूर्णतया सत्य और केवल सत्य' बोलने का वायदा करे। इससे भी अधिक मैने उसे इस बात से भी सावधान किया कि बेहतर तो यह है कि मेरा मुवक्किल पहले ही यह समझ ले कि जिस रास्ते पर चलने की मैं राय दूगा, उससे वह गिरफ्तार हो सकता है और अपने-आप

स्वीकार किये तथ्यो की विना पर कैद की सजा पा सकता है। साथ ही, यह भी मुमकिन है कि उसकी आय-कर कम करने की अपील भी खारिज हो जाय। मेरे मित्र ने मुवक्किल से वातचीत की और उसके ऊपर लिखी वातो को मान लेने पर मैने मुकदमा अपने हाथ मे ले लिया। निश्चय ही अपील का जो मसविदा तैयार किया गया था, उसमे आम ढग से यही लिखा था, "आय कर अधिकारी का आदेश कानून के विरुद्ध था और दर्ज की गई गवाहियो के आधार पर वह न्याय-सगत नही था।"

आय-कर के असिस्टैंट कमिश्नर एक सिख सज्जन थे, जिनके सामने मैं आय-कर के वहुत-से मुकदमो मे पेश हो चुका था और मेरे वारे मे उनकी काफी अच्छी राय थी। उनके सामने इस मुकदमे की सुनवाई होनी थी। जैसे ही मैं उनके कमरे मे दाखिल हुआ, वह मुझे देखकर मुस्कराते हुए बोले, "मि० मावलकर, इस वार सचमुच आपने वहुत वुरा मामला हाथ मे लिया है।"

मैंने भी मुस्कराते हुए उत्तर दिया, "इसमे कोई शक नही कि मुकदमा वहुत ही वुरा है, लेकिन फिर भी वुरे-से-वुरे मुकदमे का भी विशेष औपधि के रूप मे कोई-न-कोई उपाय होता है।

असिस्टैंट कमिश्नर तो क्या मैं यह समझू कि अन्य मुकदमो की तरह आपके पास इसका भी कोई उपाय है ?

मै जी हा, इसका भी उपाय है। इस प्रकार के वुरे मुकदमो का मेरे पास एक ही उपचार है, चाहे उनके तथ्यो मे कितना ही अन्तर क्यो न हो।

असिस्टैंट कमिश्नर—मैं आपके उस चमत्कारिक उपचार को जानने के लिए वहुत उत्सुक हू।

मैं श्रीमन्, मैंने यह मुकदमा अपने हाथ मे केवल इस शर्त पर लिया है कि मेरा मुवक्किल आपके सामने 'सत्य, पूर्णतया सच और केवल सच' वोलेगा। वह इसीलिए आया भी है तथा वह कोई ऐसी सौदेबाजी नही करेगा कि उसका आय-कर घटा दिया जाय या उससे किसी प्रकार का समझौता कर लिया जाय। वह आपके सामने अपना पूरा और स्पष्ट ब्योरा

रख देगा और फिर सारा मामला आपके फैसले पर छोड देगा। यदि आप इस बात से सतुष्ट हो जाते है कि उसने वास्तव मे सारा ब्यौरा ईमानदारी के साथ आपके सामने पेश किया है तो क्या आप उसके मामले पर कठोरता-पूर्वक विचार कर सकेंगे ? क्या आप उसके साथ दयापूर्ण व्यवहार के अतिरिक्त कोई व्यवहार कर सकते है ? यही मेरा उपचार है।

असिस्टैंट कमिश्नर बहुत खूब ! अच्छा, जरा देखे तो सही कि वह क्या कहना चाहता है।

इसके बाद असिस्टैंट कमिश्नर की अनुमति से मै मुवक्किल को एक ओर ले गया और एक बार फिर से समझाया कि इस प्रकार का पूरा तथा स्पष्ट ब्यौरा देने के क्या-क्या दुष्परिणाम और जोखिम हो सकते है। हर्जाने के तौर पर कैद की सजा और अपील भी रद्द की जा सकती है। आय-कर मे कमी हो जाने और सभावित दड के बारे मे कोई समझौता हो जाने के फायदो की ओर भी मैने उसका ध्यान खीचा। मैंने उससे यह भी कहा कि यद्यपि उसके आय-कर मे कमी हो जाने और कैद से बच जाने पर मुझे खुशी होगी, तथापि अगर उसे कैद की सजा हो जाय और अपील भी रद्द हो जाय तो मुझे कोई दु ख नही होगा, क्योकि उस हालत मे मै समझूगा कि वह अपने पापो का प्रायश्चित कर रहा है। मुझे यह कहते हुए बडी खुशी होती है कि मेरा मुवक्किल मेरी सलाह के अनुसार काम करने पर दृढ था। मै नही कह सकता कि उसने मेरे बताये रास्ते को क्यो स्वीकार किया ? मै यह नही समझता कि इस मामले के नैतिक या आध्यात्मिक पहलू ने उसे प्रोत्साहित किया होगा।

उसने सारा मामला खोलकर रख दिया। तब मैंने असिस्टैंट कमि-कमिश्नर से पूछा कि आप सन्तुष्ट है या नही, और जब उन्होने 'हा' मे उत्तर दिया तो मैंने सिर्फ इतना कहा, 'श्रीमन्, अब मै सारा मामला आपके हाथो मे छोडता हू।

असिस्टैंट कमिश्नर ने उसी वक्त अपना हुक्म लिखना शुरू कर दिया और मुझसे कहा, "मि० मावलकर, आयकर अधिकारी द्वारा आपके मुव-

विकल पर लगाये गए २५,००० रु० के आयकर को घटाकर मै १४००० रु० करता हू । क्या आपको कुछ कहना है ?"

मैं श्रीमन्, असली लाभ को देखते हुए आयकर की उचित रकम १०,००० रु० होगी। आप लगभग ४००० रु० उससे ज्यादा वसूल कर रहे है । फिर भी, मुझे इस हालत मे कुछ कहने का हक नही है, क्योंकि मैने तो सारा मामला आप पर ही छोड रखा है।

असिस्टैंट कमिश्नर लेकिन, मि० मावलकर लगता है कि एक बात आपकी पकड मे नही आई। मै अपने फैसले मे लिख रहा हू कि ४००० रु० दड के तौर पर लगाये गए है। आपके मुवक्किल को अब और किसी तरह की सजा नही दी जायगी और यह ४००० रु० गलत हिसाब दाखिल करने का हर्जाना है है।

स्वभावत इस नतीजे से हम सब लोग खुश थे।

: १५ :

रोजगार या रुपया ऐंठना

सामूहिक रूप मे वकीलो पर यह दोष लगाया जाता है कि वे अपने रोजगार से सबधित सेवाओ के लिए बहुत वडी फीसे लेते है। इस रोजगार के चद एक नामी-गरामी वकीलो के बारे मे ही यह बात सच है। जिस वकील की माग ज्यादा होती है, वह "माग और खपन" के सामान्य नियम के अनुसार अपनी फीस का स्तर नियत कर लेता है। मेरा खयाल है कि इस तरीके पर एकाएक रोक लगाना सभव नही है, क्योकि, ज्यादा न सही तो किसी हद तक यह अर्थशास्त्र के स्वाभाविक नियम के अनुरूप है।

लेकिन इसका एक पहलू ऐसा भी है, जो मेरी नजर मे बहुत ही बुरा है। कभी-कभी वकील किसी माली मामले पर अपनी तीखी नजर इसलिए गडा लेता है कि वह भी अपने लिए उसमे से कुछ ऐंठ सके। इसका नतीजा यह होता है कि वह न केवल अपनी पेशियो की तादाद को अधिकाधिक बढाने की खातिर मुकदमे को लगातार पेचीदा बनाता है, बल्कि अपनी जेबे भरने के लिए अत्यधिक अनुचित तरीको को भी हथियाता है।

ज्यादा रुपया पैदा करने की एक दिशा और है, जिसमे दिवाला-अफसरो, आदाताओ और कमिश्नरो को स्थानीय जाच-पडतालो, गवाहिया और हिसाब-जोखने आदि के कामो के लिए मुआवजा दिया जाता है। इससे वकील इतना प्रभावित होता है कि वह जजो और अदालती अफसरो का कृपा-पात्र बनने के लिए सम्मान-रहित खुशामद पर उतर आता है,

क्योकि इनके चुनाव और नियुक्ति का अधिकार उन्हीको होता है। इससे वकीलो के बिलो के टैक्स की मजूरी के सिलसिले मे भ्रष्टाचार फैलता है। उक्त मामलो मे किस तरह बढा-चढाकर बिल बनाये जाते और पास किये जाते है, यह सर्वविदित है।

यदि मैं इस सबको दिन-दहाडे की गई कानूनी लूट का नाम दू तो आश्चर्य नही कि मेरी इस भाषा को अनावश्यक रूप से कठोर कहा जायगा। फिर भी, मैं जो कुछ महसूस करता हू, वह यही है। वकालत शुरु करने के दिनो से लेकर, और आज भी, मेरा यह विचार स्थिर है। मै समझता हू कि कोई भी कानूनी नियम इन बुराइयो को रोक नही सकता। इसके अलावा दूसरा कोई चारा ही नही है कि जज, अदालती अफसर और वकील अपनी आत्मा की आवाज को सुने और पहचाने।

यद्यपि मैं अकेला ही था, तथापि हमेशा मेरी यह कोशिश रही कि जहा-तक सभव हो, मैं इस बुराई से लडता रहू। कई बार तो मुझे अपने आर्थिक लाभ का भी त्याग करना पडा। इस बारे मे यहातक हुआ कि जो रकम कानूनी तौर पर मुझे मिलनी चाहिए थी, उससे भी मै वचित रह गया। लेकिन मेरे इस खयाल से, कि मेरा अन्त करण साफ है और मेरे मुवक्किल तथा आम जनता ऐसे मामलो मे मेरे रवैये की तारीफ करती है, मुझे जरूरत से ज्यादा मुआवजा हासिल होता रहा।

यहा मै एक ऐसे ही मुकदमे का जिक्र करना चाहता हू। काच का सामान बनानेवाली एक लिमिटिड कपनी थी, जिसे बद करने का आदेश दिया गया। यदि मुझे ठीक से याद है तो पूजी के प्रत्येक शेयर का मूल्य ५० रु० था और कपनी दिवालिया करार होने से पहले तक हर हिस्से के लिए ३० रु० ले चुकी थी। चूकि कपनी की सारी संपत्ति कर्जों के भुगतान से काफी नही थी, इसलिए दिवाला-अफसर को शेयर होल्डरो से मांग करनी पडी कि वह कपनी का बाकी रुपया चुकता कर दे।

दिवाला-अफसर वकील था। वह कानून और उन नियमों को भली प्रकार जानता था, जिनके अनुसार मुआवजा लिया जा सकता

है । कपनी के मामलो मे फीस और मुआवजे का स्तर बबई नगर मे वकील और मुवक्किल के बीच मे प्रचलित मेहनताने के अनुसार होता है और बाद मे उसे अगरेजियत का रूप दे दिया जाता है। इस नियम का असर यह होता है कि यदि एक वकील एक मुकदमे मे साधारण तौर पर १० रु० लेगा तो वह ऐसे मामलो मे उसी प्रकार और उतने ही काम के लिए २०० तक की माग कर सकता है ।

किसी कपनी के वद होने या दिवालिया करार देने के मामलो मे ज्यादा वकीलो का नज़रिया यह नही होता कि कपनी के दिवालिया हो जाने से जिन ऋणदाताओ को नुकसान हुआ है, उसकी पूर्ति की जाय, बल्कि उनका उद्देश्य तो यह रहता है कि अपने भाई-बदो और अपने लिए कपनी की सपत्ति मे से अधिक-से-अधिक, जितना सम्भव हो, वटोरा जाय। हमारे वकील-मित्र दिवाला-अफसर भी इसी लोभ के चक्कर मे फस गए। उन्हे करना तो यह चाहिए था कि वह शेयर-होल्डरो से फी शेयर २० रु० की बाकी रकम को एक ही बार मे माग लेते, लेकिन उन्होने उसे दो किस्तो मे मागने की तरकीब की। ऐसा करने मे उनका स्पष्ट उद्देश्य यह था कि उन्हे एक ही काम के लिए दो बार बिल देने का मौका मिल जाय।

कानूनी तौर पर अपनी फीस को इस तरह बढाना औचित्य की दृष्टि से असगत था और कार्य की मात्रा के मुकाबिले मे अनावश्यक भी था, लेकिन उन्होने यह तरीका अख्तियार किया। फी शेयर १० रु० की माग कर लेने के वाद उन्होने अपना हित इसीमे समझा कि जो माग उन्होने की है, उसके भुगतान के लिए अदालत से हुक्म ले ले और उसके वाद शेयर-होल्डरो से वसूली की कार्यवाही करे। उन्होने यह तरकीव भी भिडाई कि अदालत उन्हीको अदालतो मे पेश होने के लिए भी तैनात कर दे।

इसका अर्थ यह था कि उन्होने फीसो का एक सिलसिला वना लिया था—एक फीस शेयर-होल्डरो से रकम की माग करने पर वनी, दूसरी माग के वारे मे हुक्म लेने पर, तीसरी कार्यवाहियो के लिए अपने-आपको वकील तैनात करने की इजाजत पर, चौथी अपने वकील यानी खुद को निर्देश

करने पर, और पांचवी अदालत मे होनेवाली कार्यवाहियो पर अमल करने की बावत। यह सारा तरीका जितना भेद-भरा था, उतना ही निंदनीय भी था। मुमकिन है अनजाने ही फीसो की इस तालिका को मैंने बढा-चढाकर पेश किया हो, लेकिन विचारणीय तो यह है कि समूचे काम को अनावश्यक रूप मे तीन या चार भागो मे बाट दिया गया था जिससे हरेक के लिए जुदा-जुदा फीस ऐंठी जा सके।

आखिर वह दिन भी आ गया, जब आज्ञा प्राप्त करने के लिए यह सारा मामला जिला-जज के सामने पेश हुआ। इन सब मामलो के आदेशो मे शेयर-होल्डरो, उनके नामो और उनमे वाजिब रकम की भिन्नता के अलावा बाकी सबकुछ एक-सा ही था। हुक्म-सबधी सारे कागज छपे हुए थे और उनपर जज के दस्तखत लेने-भर का काम था।

मै चूकि किसी दूसरे काम मे अदालत मे हाजिर था, इसलिए इस बात की प्रतीक्षा मे रहा कि कब मुझे पुकारा जाता है। मेरे दिवाला अफसर मित्र जज के सामने एक के बाद एक मामला रखते जा रहे थे, और वह उन्हे कार्यान्वित करने के आदेश-पत्रो पर हस्ताक्षर करते जा रहे थे। कुछ मामलो मे तो यह हालत थी कि ४० रु० या ६० रु० की माग की वसूली के बारे मे क्रियान्वित करने की फीस की रकम २०० रु० तक पहुच गई थी। एक छोटी-सी रकम की वसूली के सिलसिले मे फीस की इतनी बडी रकम की मजूरी को देखकर मुझे बडा धक्का लगा। लगा कि यह तो राक्षसी आचरण है।

अपने पास खडे एक वरिष्ठ वकील से मैंने धीरे-से कहा, "क्या आप इसे एकदम नीचतापूर्ण नही समझते ? मैं आपसे प्रार्थना करता हू कि आप जज से ऐसे आदेश देने का विरोध करें क्योकि इनसे सबधित वकील को छोडकर अन्य किसी को कोई लाभ नहीं है।"

मेरे वरिष्ठ मित्र मुझसे सहमत थे, लेकिन जज से कुछ कहने का साहस उन्हे नहीं था, क्योकि वह उस वकील से अपने सबध नहीं बिगाडना चाहते थे। इससे मैं बडा बेचैन हुआ, लेकिन मै कुछ देर और प्रतीक्षा मे

रहा। आखिर अतिम क्षण आ ही गया। जज ने १० रु० की माग के लिए ८० या ६० रु० की फीस का आदेश दिया। मुझसे अब और चुप नही रहा गया। मैने एकाएक विरोध किया। लेकिन जज ने कहा, "मि० मावलकर, इसके बाद मै आपका ही मामला ले रहा हू। इसमे अब ज्यादा वक्त नही लगेगा।"

मै श्रीमन्, जिस सिलसिले मे मै पेश हो रहा हू, उसके बारे मे मै निवेदन नही कर रहा। मैं बहुत देर से इन क्रियान्वित होनेवाले आज्ञा-पत्रो को देख रहा हू, और जो आदेश आप दे रहे है, उनसे मुझे बडा दु ख हुआ है। निश्चय ही न्याय के शासन को बदनाम करने का इससे बढकर कोई तरीका नही कि इतनी छोटी रकमो के लिए इतने बडे नीचतापूर्ण खर्चों की माग की जाय और उनपर अदालत के आदेश प्राप्त किये जाय।

जैसे मैंने अपनी बात समाप्त की, मैने महसूस किया कि भावावेश और सात्विक क्रोध मे मै सभवत अदालत के प्रति उचित शिष्टता की सीमाओ से बाहर चला गया हू, और मै बैठ गया। लेकिन मुझे उस समय बडा आश्चर्य हुआ जब जज ने उत्तर मे कहा, "मि० मावलकर, इस कुर्सी पर बैठकर इन आदेशो पर हस्ताक्षर करते हुए मै भी बडी बेचैनी महसूस कर रहा हू। लेकिन इससे पिड छुडाने का कोई उपाय है क्या ?"

मै यदि आप चाहते है और मुझे आज्ञा दे तो मै इस मामले मे नि स्वार्थ भाव से पेश होने को तैयार हू। यदि मुझे सबधित कागजात दे दिये जाय तो मै उनका अध्ययन करने के बाद आपकी सेवा मे उचित मार्ग पेश कर दूगा।

इससे जज बडा खुश हुआ और वकील को तुरत आदेश दिया कि सबधित कागजो की नकले मुझे दे दी जाय। इसके बाद मैने फिर कहा, "मै समझता हू कि हमारा कानून इतना बेहूदा नही हो सकता कि जो खर्चो के लिए इतनी बडी रकमो के भुगतान की मजूरी दे। ऐसे मामलो मे औचित्य की भी कुछ-न-कुछ गुजायश होगी ही। मैं अपने बम्बई के मित्रो से सलाह करूगा, अधिकृत पुस्तके देखूगा और तब अपने विचार आपके

सामने पेश करूगा।

इसपर सारा मामला न केवल स्थगित कर दिया गया, अपितु जज एक कदम और भी आगे वढ गया। जिन दस-बारह आदेशो पर वह हस्ताक्षर कर चुका था, उनके वारे मे उसने वकील से कहा, "देखो, मि०   , मै इन आदेशो को रद्द कर रहा हू और आप यह समझ ले कि यह आदेश मैने कभी दिये ही नही थे। अव इस वारे मे मै मि० मावलकर के विचार सुनकर ही कोई आदेश दूगा।

मुझे विस्तार से यह वताने की आवश्कता नही है कि इसके वाद क्या हुआ। मुझे यह वताते हुए प्रसन्नता होती है कि जो खर्चे डाले गए थे, वे वहुत कम कर दिये गए। इससे जज और सवधित वेचारे शेयर-होल्डर तो खुश हुए, लेकिन मेरे विद्वान वकील-मित्र को वडा कष्ट हुआ।

मेरा विश्वास है कि यदि वकील-वन्धु अपनी फीस के वारे मे अपने आचरण को अधिक सतुलित रखे तो वह अपने मुवक्किलो का स्नेह और विश्वास पा लेने के साथ-ही-साथ जजो द्वारा भी सम्मानित होगे। इनके अलावा राष्ट्रीय और सामाजिक कार्यो मे उचित योग प्रदान करके सामूहिक रूप मे वकील-समाज जन-जीवन मे महत्वपूर्ण स्थान भी प्राप्त कर लेगा।

मुझे एक और मुकदमे का ध्यान आता है, जिसमे एक कपनी दिवालिया हो गई थी और मै कपनी की ओर से तैनात वकीलो मे से एक था। मेरे साथी, जो ऋणदाताओ, एजेटो तथा अन्य सवधित लोगो की ओर से पैरवी कर रहे थे, अपने विल अधिक-से-अधिक देने के इच्छुक थे। इसमे कोई शक नही कि मेरे पास उन्हे ऐसा करने से रोकने का कोई मार्ग नही था। लेकिन जहातक मेरा निजी प्रश्न है, मैने यह नियम वना लिया था कि मै आम फीस से अधिक नही लूगा, चाहे वह दिवालिया कार्यवाही का मामला ही क्यो न हो।

इस मामले मे मेरा विल लगभग २५०० रु० का वना, हालाकि मेरी फीस का स्तर अहमदावाद मे सवसे ज्यादा था। लेकिन मेरा यह विल मेरी

आम फीस के अनुरूप ही था। मेरा साथी जो कि १०,००० से १५,००० रु० की रकम लेना चाहते थे, स्वभावत मेरे इस रवैये से वडे परेशान हुए। उन्होने यथासभव मुझपर दवाव डाला कि मै अपने विल की रकम को घटा दू। यह तो स्पष्ट ही है कि मै चूकि वकील-समाज के प्रति लोगो मे प्रतिष्ठा की भावना स्थापित करना चाहता था, इसलिए मैने उनकी वात को मजूर नही किया।

: १६ :

व्यावसायिक शिष्टाचार और सामाजिक न्याय

वकील-समाज के अपने रोजगार से सबधित कुछ विशेष नियम होते है, जिन्हे वे 'शिष्टाचार' के नियम या 'आचार सहिता' कहते है। नि सदेह आचरण-विषयक स्तर को ऊचा रखने के लिए कुछ नियम तो होने ही चाहिए। लेकिन दुर्भाग्यवश यह एक सामान्य अनुभव है कि तथा-कथित व्यावहारिक शिष्टाचार आम तौर पर सामाजिक न्याय एव नैतिकता के बिल्कुल विपरीत पडता है।

इस तरह के शिष्टाचार की एक सीमा निर्धारित है। यह उसी मामले मे लागू होता है, जिसमे वकील खुद ही मुद्दई या मुद्दालय हो। फिर भी समाज पर इसका जो असर पडता है, वह हानिकारक और काफी हद तक वकील-समाज की मान मर्यादा पर बट्टा लगानेवाला होता है। इसमे बहुत-से वकीलो को सर्वसाधारण द्वारा स्वीकृत न्याय और निष्पक्षता के मूल्यो की उपेक्षा करने की भी शह मिलती है। वैसे तो इस तरह के बहुत-से नियम अथवा परपराए है, लेकिन मैं यहा दो-एक के उदाहरण तक ही अपनेको सीमित रखूगा।

इस पेशे के नियमो मे से एक यह है कि कोई भी वकील किसी दूसरे साथी वकील के व्यक्तिगत मुकदमे के विरुद्ध मुकदमा न ले। यह 'नही किया जाता।' एक दूसरी परपरा यह है कि जज को यह मानना चाहिए कि वकील गवाह जो कुछ कहता है, वह सच होता है। ये दोनो नियम एक आदर्श वकील

के लिए निश्चित किये गए स्तर पर आधारित है, लेकिन यह तो महज कल्पना-लोक की बात है। ऐसा वकील मिलना मुश्किल है। इन परपराओ का उपयोग कभी कभी अन्याय और जुल्म के समर्थन मे किया जाता है। इससे वकील सहज मे ही झूठी गवाही देने को तैयार हो जाते है और झूठी-सच्ची बाते गढकर किसी एक पक्ष को मजबूत बनाने की कोशिश करते है।

इसलिए मेरे सामने यह एक समस्या थी कि मै ऐसे मामलो मे कैसा व्यवहार करू, जिनके बारे मे मेरे पास इस बात के पक्के सबूत थे कि वकील गलती पर है और वह अपनी स्थिति का अनुचित लाभ उठाकर एक नागरिक को उसके कानूनी अधिकारो से वचित कर रहा है। मै बहुत सोच-विचार के बाद इस नतीजे पर पहुचा कि पहले एक नागरिक हू और वकील बादमे। इसलिए यदि मै किसी दूसरे नागरिक के अधिकारो को कायम रखने या उनके बचाव के लिए एक वकील के विरुद्ध उसे सहायता देने से इकार करता हू तो मै अपना कर्त्तव्य-पालन नही करता। एक नागरिक के नाते समाज के एक सीमित वर्ग के मुकाबले मे समाज के प्रति मेरा कर्त्तव्य कही अधिक महत्वपूर्ण है।

इसके अलावा मैने यह भी महसूस किया कि इन परपराओ की वजह से वकील-समाज आम जनता की नजरो मे बडी तेजी से गिरता जा रहा है और समाज के आर्थिक और सामाजिक मामलो के प्रति अविश्वास तथा अरक्षा की भावना फैलती जा रही है। इसलिए मैने यह फैसला किया कि नागरिको के अधिकारो की रक्षा तथा वकील-समाज की मान-मर्यादा और उच्च स्तर को बनाये रखने के लिए मै किसी भी वकील के अन्यायपूर्ण और पक्षपातपूर्ण व्यवहार को माफ नही करूगा और उत्पीडित पक्ष की ओर से लडने के लिए तैयार रहूगा।

इस तरह मैं कुछेक मौको पर अपने वकील साथियो के खिलाफ खडा हुआ। यद्यपि मेरे इस आचरण से सबधित वकील ही नही, बल्कि सारा वकील-समाज नाराज हुआ, तथापि वक्त आने पर आम जनता ने और

वकीलो ने भी मेरी तारीफ की।

ऐसे ही एक मुकदमे मे एक सज्जन का अपने वडे भाई से, जो एक वरिष्ठ वकील था, जायदाद के वटवारे के वारे मे झगडा था, जिसे वह मौरूसी जायदाद वताते थे और फलत वह आधे के हकदार थे। वह अपने वडे भाई पर नोटिस तामील करना चाहते थे और जरूरत पडने पर उस पर मुकदमा भी चलाना चाहते थे। इसलिए उन्होने इस वारे मे दीवानी मुकदमे करनेवाले वहुत-से वकीलो की सलाह ली। हरेक ने उसे यही वताया कि जायदाद चूकि मौरूसी है, इसलिए उन्हे आधा हिस्सा लेने का पूरा-पूरा हक है, लेकिन उनमे से किसीको भी वकील को नोटिस देकर दुश्मनी मोल लेने का साहस नही हुआ।

इन हालतो मे यह मुकदमा मेरे पास आया। इस समय तक मैंने वकील-वर्ग मे अपना ऊचा स्थान वना लिया था। कितने ही वकील ऐसे भी थे, जिन्हे वकालत करते-करते मुझसे कही अधिक साल वीत चुके थे। मैंने सारे मामले को पढा और समझा और महसूस किया कि छोटे भाई का दावा न्यायपूर्ण है। मैंने मुकदमा लेना स्वीकार कर लिया, लेकिन यह सावित करने के लिए मैंने किसी आर्थिक लाभ के खयाल से नही, वल्कि न्याय की रक्षा के लिए ही यह मुकदमा लिया है, मैंने फीस न लेने का फैसला किया।

मेरा तर्क यह था कि यदि मैं फीस लूगा तो वकीलो मे सही स्तर कायम करने का जो मेरा प्रयत्न है, वह सफल नही होगा। मैंने वकील-भाई पर नोटिस जारी कर दिया। नोटिस मे यह माग की कि जायदाद का वटवारा होना चाहिए। यदि ऐसा नही हुआ तो इसके लिए मुकदमा दायर कर दिया जायगा। वकील मुझे अच्छी तरह जानते थे और उन्होने यह भी जान लिया था कि नोटिस केवल कोरी धमकी नही है। इस कारण उनपर इसका जादू का-सा असर हुआ। वकील मेरे पास आये और वटवारे के लिए राजी हो गये। इसके वाद न्याय और समानता के आधार पर जायदाद का वटवारा हो गया। इस प्रकार हम मुकदमेवाजी की परेशानी से वच गये।

एक दूसरे वकील के सिलसिले मे मामला इतना सरल नही रहा। वह मुझसे बहुत पहले से वकालत कर रहे थे और मुझसे बहुत वरिष्ठ थे। अहमदाबाद के सार्वजनिक कामो मे भी वह भाग लेते रहते थे। कई राजनैतिक सम्मेलनो मे भी उन्होने हिस्सा लिया था और जनता के सामाजिक जीवन के प्रमुख प्रकाश-स्तभ थे।

मुझे यह लिखते हुए दु ख होता है कि वह पैसे के मामले मे ईमानदार नही थे और कई बार सार्वजनिक रुपये को हडपने की कोशिश करने के कारण वह बदनाम थे। मुझे इस बात पर आश्चर्य होता था कि मेरे सहकारी और वरिष्ठ वकील, जिनका नागरिक जीवन मे प्रमुख स्थान था, कैसे इस प्रकार डरपोक या कठोर बनकर इस प्रकार के दुर्व्यवहार को सहते है। कैसे वह उन्हे सार्वजनिक जीवन मे अपने साथ रहने की इजाजत देते है। वकालत मे भी उनकी ईमानदारी पर शक किया जाता था। लेकिन मान-मर्यादा के झूठे गौरव और एक साथी-वकील के प्रति गलत सहानुभूति के कारण वकील-समाज उनके विरुद्ध कुछ नही करता था। इस रवैये से वकीलो और जजो के लिए भी इसाफ करना कठिन हो गया था।

मै इस आदमी को एक लबे अरसे से जानने और साथ-ही-साथ उसके आचरण के प्रति क्रोध और घृणा होने के कारण मैंने फौरन ही उसके विरुद्ध दो मुकदमे लेने मजूर कर लिए। इसमे कोई शक नही कि वह हिसाब-किताब के बारे मे टालमटोल करके सारा रुपया निगल जाने की कोशिश मे था। यहापर मै सक्षेप मे उन मामलो मे की गई कानूनी कार्यवाही के बारे मे जिक्र करूगा, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि किस तरह वकील और जज समान रूप मे समाज की नैतिक आवाज को दबा देते है।

यह सज्जन एक पागल आदमी के अभिभावक बनाये गए और इस सिलसिले मे एक धन-राशि भी उन्हे सौपी गई। इस काम के लिए उन्हे इस लिए चुना गया था, क्योकि उनकी एक भानजी की शादी उस पागल से हुई थी। भानजी की मृत्यु हो जाने पर इस वकील को उस पागल व्यक्ति के हित-चितन मे जरा भी दिलचस्पी नही रह गई थी। उस पागल व्यक्ति

का एक भाई भी था, जो सबसे नजदीकी रिश्तेदार था । इस सारी स्थिति को देखते हुए दरअसल उसीको उसका अभिभावक होना चाहिए था । वह पागल व्यक्ति तो पागलखाने मे था और उसका भाई ही एक ऐसा व्यक्ति था, जो उसकी देख-भाल और उसके सही इलाज तथा खान-पान के लिए धन-राशि का उपयोग कर सकता था । यह भाई माली हालत के बारे मे जानकारी चाहता था, लेकिन वकील कोई सतोपजनक उत्तर नही देता था ।

आखिरकार उसका एक रिश्तेदार मेरे पास आया । उसने मुझपर जोर डाला कि मैं इस मामले को अपने हाथ लू और वकील से हिसाव-किताव तथा उस धन-राशि की माग करू । मैने यह मजूर कर लिया, क्योकि मै यह अच्छी तरह जानता था कि जवतक वकील के खिलाफ कोई कडा कदम नही उठाया जायगा, वह उस रकम को सहज देनेवाला नही है ।

मैने बाकायदा कानूनी नोटिस देने की वजाय वकील को एक निजी पत्र लिखा । उसमे मैने उत्पन्न नई स्थिति का जिक्र किया । मैने उसमे निवेदन किया कि वह हिसाव-किताव दे, पागल के भाई को अभिभावक-पद देने के लिए इस्तीफा दाखिल करे और जो धन-राशि उसके पास है, वह भी उसीके सुपुर्द कर दे ।

इसके वाद वकील ने निजी तौर पर वातचीत की । उन्होने मुझे यकीन दिलाया कि वह हिसाव-किताव दे देंगे और अभिभावक का पद भी छोड देगे । यह मेरे लिए अच्छा ही साबित हुआ कि मैने हम दोनो के वीच हुई वातचीत को लिखा लिया । उसकी एक वजह यह भी थी कि मेरा मुवक्किल अहमदावाद का रहनेवाला नही था और मुझे वकील और मेरे दर्मियान हुई सारी बातो को डाक मे उन्हे भेजना होता था । अभिभावक वकील ने कई वार हिसाव दिखाने का वचन दिया, लेकिन हर वार वह यह वहाना करके नियत दिन टाल देते कि जिस क्लर्क को इस सारे मामले का ज्ञान है, वह इस वक्त नही है । मैं अपने मुवक्किल को लगातार उसकी इत्तिला देता रहा ।

पूरे सालभर यही होता रहा । इस बीच वकील इस बात मे सावधान रहा कि वह कोई भी बात लिखित रूप मे न दे । उसको यह बात बिल्कुल साफ

थी। अत मे जब मै उसे काफी छूट दे चुका तो मैने अदालत के लिए एक दर्खास्त तैयार की। उसमे मैने प्रार्थना की कि वकील को अभिभावक के पद से हटाया जाय और उसकी जगह पागल के भाई को अभिभावक बनाया जाय। इसके अलावा उसमे हिसाब-किताब लेने और सारी रकम का जिम्मा लेने के लिए फौरन ही आदाता बैठाने की भी प्रार्थना की।

इतना कर लेने पर भी मैंने यह सोचा कि दर्खास्त को बाकायदा अदालत मे पेश करने से पहले वकील को फिर-से इस मामले पर विचार करने का एक मौका और दिया जाय। मैंने अपने सहायक वकील को दर्खास्त के मसविदे के साथ उन्हे इत्तिला देने के लिए भेजा कि अब यह मामला अदालत मे जा रहा है। इसपर उसने मेरे सहायक वकील से कहा कि मै हिसाब-किताब दे दूगा, लेकिन मेरी राय है कि रकम का दुरुपयोग और हिसाब न देने वगैरा के इल्जामो को इसमे से निकाल दिया जाय। जहातक पागल के भाई को अभिभावक बनाने का सवाल था, इस बारे मे उनकी राय थी कि अदालत से बाकायदा हुक्म लेने के बाद ही वह इस जिम्मेदारी को उसे सौप देगे।

वकील ने इन सुझावो के साथ अपनी बात खत्म की कि उनके द्वारा सशोधित दर्खास्त को अदालत मे पेश किया जाय, कि वह अभिभावक-पद पर उसके भाई को तैनात करने पर तुरत राजी हो जायगे, और कि अदालत से कहा जाय कि वह इस बारे मे तुरत हुक्म जारी कर दे।

यद्यपि मुझे उसकी ईमानदारी पर शक था, तथापि मैंने उसके सुझाव मान लिये और उसके सशोधनो के अनुसार ही दर्खास्त को अदालत मे पेश किया। इन सारी बातो की इत्तिला मैं अपने मुवक्किल को चिट्ठी-पत्री द्वारा दे रहा था, इसलिए सारी-की-सारी बाते लिखत-पढत मे आ गई थी।

जिस दिन वकील को अपना लिखित बयान देना था, उस दिन मुझे यह देखकर बडी हैरानी हुई, और मुझे बडा धक्का लगा कि वह अपने वचन से फिर गये है। उन्होने जो-कुछ करने का वचन दिया था, उसकी अनुमति देने की बजाय उन्होने इस बिना पर दर्खास्त का विरोध किया कि

इसमे अभिभावक के पद से हटाने के बारे मे कोई कारण नही पेश किया गया।

जब मैने उनकी इस चाल को भाप लिया तो मुझे वकील के आचरण पर जो हैरानी हुई उसे जज के सामने साफ-साफ जाहिर करने से अपनेको रोक नही सका। "मेरा दोस्त कारण जानना चाहते है। मैने जानबूझकर उन्हीके कहने पर अपनी दर्खास्त से वह हिस्सा निकाल दिया था। इन्होने मुझे वचन दिया था कि भाई को अभिभावक बनाने के लिए अपनी अनुमति दे देंगे और अदालत उसीके मुताबिक हुक्म जारी कर देगी।"

किस्मत से वह दर्खास्त, जो कि असली रूप मे तैयार की गई थी, मेरे पास थी। उसमे वकील की राय के अनुसार मेरे सहायक वकील ने उसमे सुधार किये थे। मैने उसे अपने मुवक्किल के साथ हुए सारे पत्र-व्यवहार के साथ अदालत के सामने पेश किया और अपनी पहली दर्खास्त मे सशोधन करने के लिए यह दर्खास्त पेश करनी चाही, जिससे उसमे दुरुपयोग का इलजाम शामिल किया जा सके।

मेरा खयाल है कि इतने पर भी वह घबडाये नही, क्योंकि अब भी वह इत्मीनान से भोले बने बैठे थे। सशोधन के लिए मेरी दर्खास्त मजूर हो गई। इसलिए अब यह सबधित पक्षो की सहमति से हुक्म जारी करने की बजाय बाकायदा मुकदमेबाजी का मामला बन गया था।

यह मुकदमा जिला-जज के सामने पेश हुआ, जो भारतीय आई० सी० एस० थे। मुकदमे की सुनवाई होने के एक दिन पहले जज ने मुझे अपने निजी कमरे मे बुलाकर कहा, "मावलकर, ऐसा लगता है कि इस मुकदमे मे विरोधी पक्ष की बडी छीछालेदर होगी और इसे अदालत मे होने से बचाना चाहिए। आपका इसपर जोर देना वकील को मुसीबत मे भी डाल देगा और वह हाईकोर्ट की अनुशासन-सबधी कार्यवाही के अधिकार-क्षेत्र मे आ जायगे। नतीजा यह होगा उनकी प्रतिष्ठा को भारी धक्का लगेगा और वकालत भी जायगी। क्या आप किसी व्यक्ति को पच-फैसले के लिए यह मामला नही सौप सकते ?"

जज के इस रवैये से मै बडा बेचैन और निराश हुआ। यदि समाज मे

कुछ लोग अपनी विशिष्ट स्थिति का लाभ उठाकर ऐसे काम करते है, जिनसे उनकी छीछालेदर हो, तो उन्हे समाज के सामने नगा करने और सरेआम उनकी पोल खोलने मे हमे क्यो हिचक होनी चाहिए ? ऐसा करने की यदि हममे हिम्मत हो तो गुपचुप पच-फैसले के जरिये मामले को यो रफा-दफा करने की बजाय हमे आम जनता और खास तौर पर वकील-समाज के सामने बेहतर मिसाल पेश करने के लिए सच्चा रास्ता अख्तियार करना चाहिए।

चूकि मेरा यही विचार था, इसलिए मैंने उनके सुझाव को एकदम नामंजूर कर दिया। लेकिन बाद मे उनके बार-बार इसरार करने पर मैंने उनकी बात मान ली। इस बात को मान लेना मेरी निजी कमजोरी ही थी, जैसाकि मुझे आज महसूस होता है। मैंने जज से कहा कि मै इस मामले पर विचार करूगा और पच-फैसले के लिए किसी उपयुक्त व्यक्ति की तलाश मे रहूगा, बशर्ते कि मेरा मुवक्किल भी इसके लिए रजामद हो। मैंने अपने उस मित्र को बुलाया, जो शुरू मे मेरे पास यह मुकदमा लेकर आया था और सारी स्थिति उसके सामने रख दी। उसने भी पच-फैसले के सुझाव का विरोध किया। वह कहने लगा, "कोई भी आदमी ऐसे अपयश के काम मे अपने हाथ नही सानेगा। यदि इसानी तौर पर हमारे लिए यह मुमकिन होता कि हम वकील की न्याय और निष्पक्षता की भावना को जगा पाते तो यह मामला जज के सामने कभी पेश ही न होता।"

मेरे मुवक्किल ने चूकि अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी, इसलिए मैंने जज को इत्तिला दे दी कि इस मामले मे किसी प्रकार पचफैसला या समझौता मुमकिन नही है। फलत उसके निर्णय की जिम्मेदारी उन्हे ही अपनें ऊपर लेनी है। बतौर जज के उनका यह फर्ज था कि वह लोगो को गलत राह पर जाने से रोके और उन्हे सीधा और सही रास्ता दिखावे। वकीलो के मामलो मे तो खास तौर पर उन्हे उनके आचरण की श्रेष्ठता पर जोर देना चाहिए।

जब मैं अदालत मे इस मामले पर बहस कर चुका तो मेरे सारे तर्क जज ने मजूर कर लिये। वकील को अभिभावक-पद से हटाने और उसकी जगह

पर मेरे मुवक्किल को तैनात करने के हुक्म जारी कर दिये गए। लेकिन आखिर तो यह कागजी हुक्म ही था। मेरे मुवक्किल को इस हुक्म को लागू कराने और हिसाब लेने मे छ से आठ वर्ष लग गये।

जहातक सबध इस प्रथा का है कि गवाह के रूप मे वकील जो कुछ भी कहे, जज को उसे सच ही मानना चाहिए, इस बारे मे मेरा बडा दुखदायी और दुर्भाग्यपूर्ण अनुभव यह है कि इसके कारण भ्रष्टाचार फैलता है और वकीलो के चरित्र का भी पतन होता है। यह सब चुपचाप यह मान लेने का कारण होता है कि अदालत वकील के शब्दो पर विश्वास करती है और तदनुसार उन्हे कई प्रकार की सेवाओ के कार्य सौंपे जाते है, जैसे स्थानीय जाच, निरीक्षण और नोटिस जारी करना, आदि। इससे वकील को इस बात की काफी गुजाइश हो जाती है कि वह छल-कपट करके उस पक्ष की रियायत करे, जो उसे उसकी फीस दे-दे।

मेरी राय मे वकीलो के लिए यह अच्छा ही होगा कि वे फीस लेकर इस तरह के मामले हाथ मे न ले। लेकिन खेद है कि आम लोगो की यह प्रवृत्ति है कि वे ऐसे कामो के लिए अन्य नागरिको की बजाय वकीलों को ही महत्व देते हैं। इसके अलावा जब वकील को ऐसे मामलो के लिए तैनात किया जाता है, जो उसके वकालती पेशे से भिन्न होते हैं, तो जज एक प्रकार से उसका सरपरस्त बन जाता है और नतीजा यह होता है कि वकील अपनी आजादी खो बैठता है।

सक्षेप मे यह कहा जा सकता है कि वकीलो और जजो द्वारा समान रूप से इस प्रकार की प्रथाओ पर अमल करने के कारण जनता के सामने एक भद्दी मिसाल उपस्थित हो जाती है। ये प्रथाए अदालतो और सामूहिक रूप मे वकीलो मे विश्वास और उनके सम्मान को ठेस पहुंचानेवाली हैं।

: १७ :

कागजों का सावधानी से अध्ययन

किसी मुकदमे के सारे दस्तावेजो का सावधानी के साथ अध्ययन और उससे सबधित तथ्यो की पकड कर लेने मे ही वकालत की सफलता का भेद छिपा हुआ है। केवल तभी मुकदमे के कमज़ोर तथा मजबूत नुक्तो की सही-सही पहचान सभव हो पाती है। इसके बाद ही वकील समूचे मामले के बारे मे कोई राय बना सकता है और यह फैसला करने लायक हो पाता है कि मन-चाहा नतीजा हासिल करने के लिए उसे किस प्रभावपूर्ण ढग से उसकी पैरवी करनी चाहिए।

मैं अपनी बात का समर्थन कुछ उन मुकदमो का विवरण देकर करूगा, जो जमालपुर-नगर-योजना के मुकदमो के नाम से मशहूर हैं। अगस्त १९२३ मे मुझे इन मुकदमो की पैरवी के लिए तैनात किया गया था।

अहमदाबाद की नगरपालिका ने एक नगर-विकास-योजना बनाई थी, जो जमालपुर-क्षेत्र के नाम से विख्यात है। इस योजना के अनुसार समूचे नगर को बहुत-सी सुविधाए दी गई थी, जैसे मवेशी-बाजार, मल-मूत्र फेंकने के लिए एक बन्द स्थान, नाली साफ करने के लिए एक पपिग स्टेशन, एक कसाईखाना, गोशालाए, दूधियो तथा मजदूरो को रहने के लिए मकान, आदि। इस योजना मे खास तौर पर जमालपुर को पानी पहुचाने, गलियो और सडको मे प्रकाश, खेल के मैदानो आदि की भी सुविधाए प्रदान की गई थी।

नगर-योजना एक्ट के अधीन नगरपालिका को यह हक दिया गया था कि वह इस योजना के क्षेत्र मे शामिल हर प्लाट-होल्डर से उस लागत का पूरा-का-पूरा या हिस्सा वसूल कर सकती है, जो नगरपालिका उस क्षेत्र को सेवा-सुविधाए देने के लिए खर्च करे या खर्च करने की आशा करती है, बशर्ते कि इस योजना के फल-स्वरूप विकास की सभावना हो और अतत प्लाटो की भी कीमते बढ जाय।

सिद्धात यह है कि सार्वजनिक व्यय से चलनेवाली विकास-योजना से अगर किसी मालिक को उसकी जायदाद की कीमत बढ जाने का फायदा होता है तो यह उचित और न्यायपूर्ण ही है कि वह उस योजना पर होनेवाले कुल खर्चे के लिए अपने लाभ का कुछ हिस्सा दे।

इसलिए प्रत्येक योजना मे इन बातो पर विचार कर लेना चाहिए. १ सभी सुविधाए प्रदान करनेवाली योजना पर होनेवाला कुल खर्च। २ योजना-क्षेत्र के अन्तर्गत इस योजना के कारण जमीन और जायदादो के मूल्यो मे जो बढोतरी हुई, उसका योग। ३. योजना-क्षेत्र मे आनेवाले जमीन के प्रत्येक टुकडे (प्लाट)अथवा जायदाद की कीमत मे इन सुविधाओ के कारण होनेवाली बढोतरी।

यह तो स्पष्ट ही है कि विभिन्न प्लाटो की कीमत मे होनेवाली वृद्धि न तो एक जैसी होगी और न समान अनुपात मे। किसी विशेष सुविधा के कारण उसमे आ जाना लाजिम है। जो प्लाट एक स्कूल, बाजार या सार्वजनिक बाग के निकट होगा, जिसके नजदीक सडके होगी, जहां पानी की सहज सुविधा होगी, उसकी कीमत उनसे अधिक होगी, जो इन सुविधाओ से दूर होंगे।

नगर-योजना-एक्ट मे दो सीमाए तय थी, जिनके बीच ही मे अशदान की मात्रा निश्चित की जानी थी। पहली यह कि अशदान की मात्रा किसी प्लाट की कीमत में होनेवाली अनुमानित वृद्धि के ५० प्रतिशत से अधिक नही होगी। दूसरी यह कि अशदान का कुल योग योजना पर होनेवाले कुल खर्च से अधिक नही होगा।

मान लो कि योजना मे किसी प्लाट के पास से एक नई बडी सडक निकालने की व्यवस्था की गई है, जिससे प्लाट की महत्वपूर्ण स्थिति हो जाती है और इससे उसकी कीमत ५० हजार हो जाती है। उस हालत मे अगर योजना का कुल खर्च सुविधाए देने के कारण हुई वृद्धि से कम नही है, तो प्लाट के मालिक के अशदान की देनदारी २५ हजार रुपये से अधिक नही होगी। लेकिन यदि योजना पर होनेवाला कुल खर्च सुधार से हुई मूल्य-वृद्धि से कम है, तो प्रत्येक प्लाट का अशदान उसी अनुपात से कम हो जायगा।

इसलिए सबसे जटिल प्रश्न जो सामने आया, वह यह था कि प्रत्येक प्लाट की सुधार की कीमत का अनुमान कैसे लगाया जाय। इसका पैमाना क्या हो ? वह कौन-सा तरीका या स्तर हो सकता है, जिसके आधार पर कोई यह कह सके कि नगर-विकास-योजना द्वारा प्रदत्त सुविधाओ से किसी प्लाट का वर्तमान मूल्य इतना या यहातक बढ जायगा।

अनिवार्य रूप से जायदाद को ग्रहण करने के मामले मे तो किसी हद तक कीमत का अदाजा करना सहज है, क्योकि ऐसा करने के लिए हमारे सामने वह असली कीमत होती है, जिसपर उस बस्ती मे अन्य प्लाट बिके या बदली किये गए हो। इसके अलावा, हमारे पास किराये के भी आकडे होते है, जिनसे किसी भी जायदाद का मूल्याकन करना सहज होता है, क्योकि जायदाद की कीमत का किराये से सबध होता ही है। लेकिन समस्या तो यह है कि हम उस जायदाद की कीमत का अनुमान किस आधार पर करे, जो ऐसे इलाके मे हो, जिसमे कुछ सुधार किये गए हो और सुविधाए दी गई हो ?

जायदाद की कीमते स्वत स्वतत्र नही होती। न तो वे स्थिर होती हैं और न यह जरूरी है कि उनकी उतनी ही कीमत हो, जितना उनपर खर्च किया गया है। इनकी कीमते बहुत-सी बातो पर निर्भर करती है, जैसे उस खास इलाके मे होनेवाली जायदाद की माग, व्यापार की हालत आदि, किसी इलाके की लोकप्रियता या अप्रियता और खरीदने-बेचनेवालो की माली

हालत और उनकी जरूरत। इन तथा अन्य बहुत-सी बातो को किसी जायदाद का मूल्य तय करते वक्त ध्यान मे रखा जाता है। लेकिन बाजार-भाव पर ही अक्सर जायदादे एक से दूसरे के हाथो मे आती-जाती रहती है, इसलिए जायदाद को अनिवार्य तौर पर प्राप्त कर लेने पर भी उसकी कीमत का हिसाब बाजार-भाव के आधार पर ही करना उचित होगा।

खैर, अब मैं फिर अपनी असली बात पर आता हू। किसी योजना द्वारा प्रस्तावित सुविधाओ को ध्यान मे रखते हुए किसी खास योजना-क्षेत्र की जायदादो मे किये गए सुधार की कीमत निश्चित करने का आधार क्या है? अक्सर होता यह है कि मध्यस्थ (योजना तैयार करनेवाले के लिए यह शब्द प्रयोग मे आता है) योजना के अतर्गत प्रत्येक जायदाद या प्लाट के बारे मे, उस हल्के की जायदादो के सब मालिकों से सलाह करने के बाद, आखिरी तजवीज करता है और सुधार-सबधी अशदान की रकम निश्चित करता है। यदि कोई मालिक उसके फैसले से असतुष्ट हो तो वह खास तौर पर इसी मतलब से नियत की गई विशेष अदालत मे उसके फैसलों के खिलाफ अपील कर सकता है।

ऐसे बहुत-से मामले होते है, जैसे प्लाट की लबाई-चौडाई, उसतक सडको की पहुच, हर्जाना तय करना, क्षेत्रो की सीमाए लगाना, आदि, जिनके बारे मे मध्यस्थ का फैसला आखिरी होता है और कोई भी मालिक उसके खिलाफ कुछ नही कर सकता। इसलिए केवल प्लाटो की कीमत की बढोतरी और उसके लिए प्रत्येक प्लाट के मालिक के बढे हुए अशदान से ही हमारा यहा सबध है। इस विशेष अदालत मे तीन व्यक्ति होते हैं—जिला-जज, जो कि उस क्षेत्र-विशेष का कानूनी अधिकारी होता है, एक कानून का अनुभवी स्वतत्र व्यक्ति, और एक मध्यस्थ।

यह बडा अटपटा-सा लगता है कि उस मध्यस्थ की ऐसे मामले मे फिर से राय ली जाय, जिसके फैसले के खिलाफ यह अपील की गई हो। लेकिन विशेष अदालत मे उसकी उपस्थिति इसलिए आवश्यक समझी जाती है, क्योंकि एक तो वह उस मामले का खास जानकार होता है, दूसरे, वही

एक ऐसा जिम्मेदार आदमी है, जो अपने फैसले के वारे मे विशेप अदालत के सामने सफाई पेश कर सकता है। वाद मे, सन् १६३८ मे, इस एक्ट मे सशोधन किया गया और तवसे मध्यस्थ विशेप अदालत मे शामिल नही होता। जिला-जज इस विशेप अदालत का अध्यक्ष होता है।

जमालपुर नगर-विकास-योजना से सवधित ऐसी साठ अपीलो के मामले थे, जिनकी मुनवाई और फैसले के लिए विशेप अदालत ने तीन दिन निश्चित किये। चकि विचारणीय विषय (मुधार की कीमत निश्चित करना) अदालत और वकीलो के लिए समान रूप से अजीव-सा था, इस-लिए मैने मामले की सुनवाई से दा दिन पूर्व जिला-जज को सुझाव दिया कि यह वात हम सवके लिए सुविधाजनक होगी, यदि मध्यस्थ हमे उस सिद्धात के वारे मे समझा दे, जिसके आधार पर उन्होने सुधार की कीमत का निश्चय किया है। मैने उनको यह भी सूचित किया कि जैसे ही खुली अदालत मे मामले आयगे, मैं उस वारे मे जाब्ता दर्खास्त करूगा, और मुझे आशा है कि वह मेरा समर्थन करेंगे। जिला-जज इस वात पर राजी हो गया।

उन मामलो मे लगभग पच्चीस वकील खडे हुए थे। हममे हरकोई किकर्त्तव्यविमूढ-सा था। सुधार की कीमत तय करने के सिद्धात के वारे मे हम विल्कुल अधकार मे थे, आर हमारे पास कुछ ऐसी विशेप सामग्री भी नही थी, जो कीमतो के वारे मे कोई सवूत पेग कर सकती। हमने पार-स्परिक मार्ग-दर्शन का भरोसा किया और नेतृत्व के लिए एक-दूसरे की ओर देख रहे थे। किसीने भी मामले को गहराई से नही देखा था और न सारे मामले के दस्तावेजो का अध्ययन किया था। प्रत्येक वकील आकडो और अपने निजी मामले के खास पहलुओ तक ही अपनेको सीमित किये हुए था, हालाकि सारी योजना का ढाचा हर मामले के लिए एक विशेप महत्व रखता था।

मेरे हाथ मे छठा और वारहवा—दो मामले थे। मै यह महसूस करता कि अपनी पूरी ताकत लगाकर भी यह कहने मात्र से कोई लाभ नही होगा

कि अशदान की रकम बहुत ज्यादा है। वकील को इस बात के लिए तो उचित कारण देने ही चाहिए कि अमुक रकम क्यो और किस हद तक ज्यादा है। मैंने इस मामले पर बेहद गहराई के साथ विचार किया, लेकिन कही कुछ प्रकाश दिखाई नही दिया। मैंने नगर-विकास-एक्ट की धारा-उपधाराओ को बार-बार पढा, लेकिन मुझे उनमें अपनी सहायता के लिए कुछ भी नही मिला। इस एक्ट का मोटा सिद्धात तो स्पष्ट ही था कि जो लोग सुविधाओ का फायदा उठा रहे है, उन्हे उन सुविधाओ पर हुए खर्च का अशदान देना ही चाहिए।

उन मामलो के रिकार्डो मे आकडे-ही-आकडे थे। आकडो के अलावा उनमे और कुछ भी नही था। सडको, जल-वितरण, सडको की रोशनी, नालिया बनाने, आदि के अनुमानित व्यय के आकडे। इसमे कोई संदेह नही कि अनुकूल व्याख्या के बिना आकडे कुछ विशेष सहायक नही हो सकते।

मैंने तब यह सोचकर रिकार्ड की छानबीन शुरू की कि मध्यस्थ ने प्रत्येक मामले मे जिस आधार पर सुधार की कीमत निश्चित की है, मुझे उस बारे मे वहा से कोई सुराग मिलता है या नही। क्या उसने पहले साधारण तौर पर उस क्षेत्र के सभी प्लाटो का वर्तमान मूल्य लगाया और फिर ठीक-ठीक हिसाब करके बटवारे के आधार पर प्रत्येक प्लाट की कीमत लगाई ? अशदान की जो रकम उसने निश्चित की थी, वह स्वभावत' एक दूसरे प्लाट से भिन्न थी। प्लाटो को समान रूप मे दी गई सुविधाओ के फल-स्वरूप उन सबकी कुल बढोतरी का पहले से निश्चय किये बिना प्रत्येक प्लाट के मूल्य का फैसला वह कैसे कर सकते थे ?

इस प्रश्न ने मुझे स्वाभाविक रूप से सभी प्लाटो की कुल कीमत बतानेवाले आकडो की जांच-पडताल करने के लिए प्रेरित किया। ये आकडे प्लाटों को सुधार-सबधी कीमतो और योजना पर होनेवाले कुल खर्च के हिसाब के नीचे दर्ज किये गए थे। मुझे यह देखकर प्रसन्नता भी हुई और आश्चर्य भी कि प्लाटो मे सुधार के कारण कीमतो मे जो कुल बढोतरी हुई वह योजना पर होनेवाले कुल खर्च से ठीक दुगुनी लिखी हुई थी। प्रसन्नता इसलिए

हुई कि मुझे इससे इस बात का सुराग मिल गया था कि मध्यस्थ ने किस हिसाब से कीमत लगाई है। और आश्चर्य इसलिए कि हम सब इस मामले को देखकर यह सोचे बैठे थे कि इस मामले पर तो विशेषज्ञ का ही एकाधिकार है।

अब मेरे लिए यह बिल्कुल स्पष्ट था कि कीमत आकने अर्थात् कीमत मे हुई बढोतरी का अनुमान लगाने का रहस्य केवल विशेषज्ञ ही नही, बल्कि कोई भी व्यक्ति गणित के साधारण से ज्ञान जान सकता है। कानून के मुताबिक कीमत मे होनेवाली बढोतरी का अधिक-से-अधिक ५० प्रतिशत ही अशदान के रूप मे लिया जा सकता था। इसलिए प्लाट के मालिको से योजना पर खर्च होनेवाली कुल रकम वसूल करने का केवल एक ही तरीका था कि अधिकारी कीमतो मे बढोतरी का अनुमान कुल खर्च से दुगना आके। इसमे शक नही कि मैं इस नतीजे पर पहुचने से पहले कि विशेषज्ञ का हिसाब जाचने का तरीका इतना सहज होता है दो बार अवश्य ही इस मामले पर विचार करता। लेकिन मैने ऐसा इसलिए नही किया, क्योकि प्लाटो के मूल्यो मे होनेवाली बढोतरी को न केवल रुपयो के मोटे आकडो मे, बल्कि आना-पाइयो तक मे भी दुगुना दिखाया गया था।

अपनी समस्या का हल खोजने के लिए अब मुझे आगामी कार्यवाही की योजना बनानी थी। योजना पर होनेवाले अनुमानित व्यय के आकडो मे मैं जिस हिसाब से कटौती कर सकता था उसी हिसाब से अब मेरे लिए अशदान की रकम मे भी कमी करना सभव हो गया था। इसमे कोई शक नही कि अनुमानित व्यय को गलत सिद्ध करना या यह कहना कि वह बढा-चढाकर दिखाया गया है, व्यावहारिक नही था। इसलिए मैं कुछ ऐसे तर्क सोचने लगा, जिनके द्वारा मैं योजना पर होनेवाले व्यय के आकडो मे कमी दिखाने मे सफल हो सकू।

बहुत सोच-विचार के बाद मेरे दिमाग मे एक बात आई, वह यह कि योजना मे बहुत-सी मदे ऐसी थी, जिनका उद्देश्य एकदम अथवा वास्तव मे अहमदाबाद की नगरपालिका के सारे क्षेत्र को लाभ पहुचाना है। मिसाल के

तौर पर, मवेशी-बाजार, कूड़ा डालने का स्थान और नालियो का हौज, आदि। तो फिर योजना-क्षेत्र की जायदादो पर इन मदो के खर्चे की रकम क्यो लादी जाय ? इसमे शक नही कि ये मदे थी तो योजना-क्षेत्र मे ही, लेकिन इनसे समूचे नगर को लाभ होना था। निश्चय ही न्याय और निष्पक्षता की दृष्टि से इस प्रकार की सारी मदो के खर्चे की जिम्मेदारी नगरपालिका के सारे क्षेत्र पर पडनी चाहिए थी।

इस तर्क से नगरपालिका के सपूर्ण क्षेत्र के लिए उपयोगी और लाभदायक मदो के व्यय को निकालकर योजना के लागत-खर्चे मे कमी करने के लिए ठोस और अकाट्य आधार मिल गया। मैंने यह निर्णय किया कि मैं अपने मामले मे इसी तर्क को मुख्य आधार बनाऊगा।

मेरे दिमाग मे और भी कुछ अत्यन्त महत्वपूर्ण बाते आईं। यद्यपि वे सदिग्ध थी, तथापि विशेष अदालत को हमारे पक्ष मे कर सकती थी। मध्यस्थ का दावा था कि इस विषय के खास जानकार की हैसियत से ही उन्होने सुधार की कीमते निश्चित की हैं और वास्तव मे, एक अच्छी नगर-विकास-योजना बनाना उस विषय के माहिर लोगो का ही काम है। लेकिन यह जरूरी नही कि किसी खास इलाके की जायदादो के सर्वमान्य मूल्य के बारे मे जानकारी रखना उस विशेषज्ञ का ही एकमात्र अधिकार हो, जिसने यह योजना बनाई थी। इसलिए मैंने कुछ मशहूर दलालो को, जो जायदादो की खरीद-फरोख्त का काम करते थे, गवाही के लिए पेश करने का फैसला किया, जिससे मध्यस्थ के निश्चित मूल्यो का विरोध किया जा सके।

इस प्रकार इस मामले से सबधित सब रिकार्डों का सावधानी के साथ अध्ययन करने और उस विषय के विभिन्न पहलुओ पर खूब सोच-विचार का ही यह नतीजा था कि मैंने विशेष अदालत मे मध्यस्थ का मुकाबला करने के लिए अपने-आपको तैयार कर लिया। मुकदमे की पेशी होने पर मैंने विशेष अदालत के अध्यक्ष से प्रार्थना की कि वह मध्यस्थ से कहे कि वह हम वकीलो को उन सिद्धान्तो को समझायें, जिनके आधार पर उन्होंने सुधारो का मूल्य निश्चित किया है। मध्यस्थ करीब पन्द्रह मिनट तक उन्हीं

बातो को दुहराता रहा, जिनका कोई विशेष महत्त्व नही था।

उसने कहा कि यह तो अनुभव की बात है, जिसे मैने बहुत-सी नगर-विकास-योजनाए बनाकर एकत्र किया है। इसलिए मै इस स्थिति मे हू कि मै सुधारो के कारण सही तौर पर अनुमानित बढोतरी की भविष्यवाणी कर सकता हू। उन मामलो की पैरवी करने के लिए लगभग तीस वकील उस समय अदालत मे उपस्थित थे।

वास्तव मे मध्यस्थ का बयान किसी बात का स्पष्टीकरण तो था नही, उसका मतलब तो केवल यही था कि वह अपने काम का माहिर है, और उस हर जिम्मेदार व्यक्ति के बारे मे यह आशा की जाती है, जिसे सारा काम सौपा गया हो।

इसपर मुझे उनसे इस मामले से सबधित प्रश्न करने का अवसर मिल गया। मैने पूछा, "क्या मैं यह जान सकता हू कि कीमतो की अनुमानित बढोतरी का योजना के खर्च से कोई सबध है या नही? अथवा क्या यह आकडे स्वतत्र रूप से तैयार किये गए है?"

विशेष अदालत का अध्यक्ष चतुर व्यक्ति था। मेरे प्रश्न के गूढ अभिप्राय को समझ गया। उसने मुझे आदेश दिया कि मै मध्यस्थ के बयान से ही सतुष्ट हो जाऊ और उससे जिरह न करू।

इसके बाद अलग-अलग मामलो की सुनवाई हुई। व्यावहारिक दृष्टि मे केवल इस एक प्रश्न का निर्णय करना था कि प्रत्येक मालिक को नगर-पालिका को कितनी रकम देनी है। एक के बाद एक मामले की सुनवाई होती रही। दावेदारो की ओर से उनके वकीलो ने जिरह की। नगरपालिका के वकील ने उनका उत्तर दिया और विशेष अदालत ने उसपर अपना फैसला दे दिया। इन मामलो पर फैसला देने के लिए अपनाई गई सक्षिप्त प्रणाली के कारण प्रत्येक मामले को निबटाने मे १५ मिनट से अधिक नही लगे।

इस ढग से पहले पाच मुकदमे निबट गये। प्रत्येक मामले मे अशदान कम करने की माग को नामजूर कर दिया गया। इसके बाद मेरे नम्बर छ के

मामले की बारी आई और मैं पेश हुआ ।

मैंने शुरू मे ही कह दिया कि मैं अपने मुकदमे की शुरुआत योजना के आम स्वरूप की प्रारभिक जाच-पडताल और उन सिद्धातो से करना चाहता हू, जिनके आधार पर कानूनी तौर पर कम-से-कम निष्पक्षतापूर्वक अशदान की रकम निश्चित की जा सकती है । इसके बाद मैं स्थानीय विशेषज्ञो को, जो स्थानीय जायदादो की खरीद-फरोख्त का काम करते हैं, गवाहिया पेश करूगा । ऐसा करने का मेरा मतलब यह है कि विशेष अदालत के विशेषज्ञ-सदस्य अर्थात् मध्यस्थ ने जो कीमते निश्चित की है, उसके विपरीत मैं सही-सही कीमते प्रकट कर सकू ।

मुझ जैसे नौजवान वकील की धृष्टता से मध्यस्थ चकित हुआ । उसे यह बडा अटपटा लगा कि उसके विरुद्ध दूसरे विशेषज्ञो को खडा करके उसकी 'विशेषज्ञ' राय को चुनौती दी जा रही थी । वह कुछ आपे-से बाहर और खीझा-सा दिखाई पडा । लेकिन जज का रवैया सहानुभूतिपूर्ण था और उसने सारे प्रश्न पर कानूनी दृष्टि से विचार किया । वह इस बात को जानता था कि यदि मुझे आवश्यक और उचित जान पड़े तो मुझे ऐसी गवाही पेश करने का अधिकार है । विशेष अदालत मेरे तर्क और गवाहिया सुनने के लिए बाध्य थी और इसलिए विशेष अदालत का अध्यक्ष होने के नाते उन्होने मुझे मामला पेश करने के लिए कहा ।

मैंने मुकदमे के आम स्वरूप पर बोलना शुरू किया, जो कि काफी हद तक मेरे हक मे था । मुझे यकीन था कि मैं अपने तर्कों को इतनी मजबूती के साथ पेश करूगा कि कोई भी उनका जवाब नहीं दे सकेगा और इस प्रकार अशदान की रकम मे कमी हो जायगी । मैंने सबसे पहले यह बताया कि योजना मे विकास के लिए जिस क्षेत्र को चुना गया है, वह कई कारणो से लोकप्रिय नही है । इसके अलावा इस बात की भी कोई आशा नही कि योजना मे इस क्षेत्र को सडकें, जल-वितरण तथा प्रकाश-व्यवस्था आदि की जो सुविधाए दी गई हैं, उनसे इस इलाके का कोई खास विकास होगा ।

इसके बाद मैंने इस मुकदमे के दूसरे महत्वपूर्ण पहलू को लिया, और वह यह

कि अतिरिक्त सुविधाए प्रदान करने के बावजूद उस क्षेत्र मे प्लाटो की कीमते गिर जाने की सभावना है। योजना मे अन्य शब्दो के साथ-साथ यह मदे भी हैं—नालियो के पानी को निकालने के लिए जगह बनाना, बूचडखाना, कूडाघर और मवेशी-बाजार आदि की व्यवस्था।

वस्तुत इस क्षेत्र विशेष को सारी अस्वस्थकर और गदगी की चीजो को दबाने का स्थान बनाया गया है, जिसका लाभ समूचे नगर को ही होगा, न कि केवल इसी योजना-क्षेत्र को। यदि मेरा तर्क सही है तो क्या फिर यह सोचना उचित है कि कुछ ककरीली सडको, रोशनी और कुछ नलो की सख्या बढा देने मात्र से ही वहा के प्लाटो की कीमते बढ जायगी ?

इस मामले का एक और पहलू भी इतना ही महत्वपूर्ण था। नगर-विकास-योजना की इन सारी मदो से केवल इस एक छोटे-से क्षेत्र को ही लाभ नही था, बल्कि नगरपालिका के समूचे क्षेत्र को था। कानूनी पहलू को एक तरफ छोडकर भी अगर देखा जाय तो क्या यह न्यायपूर्ण था कि उन मदो का खर्च, जिनका लाभ तो सारे नगरपालिका-क्षेत्र को मिलना था, लेकिन सबधित क्षेत्र के लिए जो अभिशाप-स्वरूप थी, उस क्षेत्र-विशेष के प्लाट-मालिको से ही चालाकी से वसूल किया जाय ?

मैने इस बात पर जोर दिया कि इस प्रकार की सभी मदो के खर्च को कानूनी अनुपात के आंकडे बनाने अथवा अशदान के साथ खर्च का सबध जोडने के लिए योजना के खर्च मे शामिल न किया जाय।

मामले को पेश करने के मेरे ढग ने मध्यस्थ को छोडकर विशेप अदालत के अन्य दो स्वतत्र सदस्यो को बडा प्रभावित किया। चूकि दोपहर के विश्राम का समय हो चुका था, इसलिए अध्यक्ष ने आधे घटे के लिए मुकदमे की कार्यवाही स्थगित कर दी।

जब अदालत फिर बैठी तो अध्यक्ष ने मुझसे कहा, "मि० मावलकर, आपने जो कुछ कहा था, उसे ध्यान मे रखते हुए हमने नगरपालिका के वकील (स्व० सर रमणभाई एम० नीलकठ, जो उस समय नगरपालिका के अध्यक्ष भी थे) को सलाह-मशवरे के लिए बुलाया था और उन्होने हमारे

इस सुझाव को मजूर कर लिया है कि कीमतो मे बढोतरी के कारण आपके मुवक्किल से अशदान के ५० प्रतिशत की जो मांग की गई थी, उसे घटाकर ४० प्रतिशत कर दिया जाय।"

मुझे इस बात की तसल्ली थी कि मैने बडी लडाई तो जीत ली, लेकिन मामले को और स्पष्ट करने के लिए मैंने कहा, "मैं आपका आभारी हू कि आपने हरेक मामले मे दस प्रतिशत की कमी कर दी है, लेकिन उन पाच मामलो का क्या होगा, जिनके विपय मे विशेष अदालत ने मालिको की कमी करने की अपील को नामजूर करते हुए अपना फैसला दे दिया है ? मै यह समझता हू कि उन्हे भी कमी का यह लाभ मिलना चाहिए।"

अध्यक्ष—"हा, उनके मामलो मे भी कमी हो जायगी। नगरपालिका के वकील इसके लिए भी राजी हो गये है।"

सभी सबधित दावेदार, जो मुकदमे की कार्यवाही देखने के लिए अदालत मे जमा थे, मुकदमा पेश करने के मेरे ढग और उसके परिणाम से बहुत सतुष्ट थे। उन्होने मेरी दृढतापूर्ण वकालत की तारीफ की। इस बारे मे मुझे तो केवल यही कहना है कि वकील होने के नाते यह मेरी उस मेहनत का नतीजा था, जो मैंने मामले का सावधानी से अध्ययन मे की और उसपर उचित सोच-विचार से काम लिया।

उसके बाद मैंने मामले को फिर वही से उठाया, जहा उसे छोडा था। मैंने कहा कि मैंने मूल्याकन पर आम तौर से और खास तौर पर अपने मामले के मूल्यांकन पर मध्यस्थ को चुनौती दी थी। इसलिए मै मूल्याकन के लिए उन स्थानीय विशेपज्ञो की गवाहिया पेश करना चाहता हू, जिनका आमतौर पर अहमदाबाद मे, और खास तौर पर योजना-क्षेत्र की जायदादों की खरीद-फरोख्त से सबध है। इसका मतलब तो स्वभावत. यही था कि जो पूरे तीन दिन सभी मामलो के फैसले के लिए रखे गए थे, वे अकेले मेरे ही मुकदमे मे लग जाते।

अध्यक्ष कानूनी दृष्टि से तो मुझे ऐसा करने से नही रोक सकता था, लेकिन उसने मुझसे प्रार्थना की कि यदि सभव हो तो मूल्यांकन के बारे मे

गवाहिया पेश करने का इरादा छोड दू । इसमे कोई शक नही कि मुझे या तो आशा ही नही थी, और थी भी, तो बहुत कम, कि मध्यस्थ, जो विशेष अदालत का स्वय एक सदस्य था, के विरुद्ध मेरी गवाहियो की राय को विशेष अदालत मान लेगी । मैने इसे उचित समझा और इसलिए अध्यक्ष की बात को मानते हुए मूल्याकन के विषय मे गवाहिया पेश करने का इरादा छोड दिया । क्योकि विशेष अदालत के फैसले अतिम थे, इसलिए ऐसा करने मे बुद्धिमानी थी ।

परिणामत मामला केवल इतना ही रह गया था कि जो तथ्य रिकार्ड पर दर्ज है, उन्हीपर बहस की जाय । मुझे यह कहते हुए खुशी होती है कि जो मुकदमा मेरे हाथ मे था, उसके अशदान मे और कमी करने की मेरी अपील को विशेष अदालत ने बहुमत से मान लिया । वकालत का एक यह भी हिस्सा है कि वकील जज के मनोभावो की इज्जत करे और नम्रता तथा समझदारी से उसे अपने पक्ष मे कर ले ।

मेरा मुकदमा खत्म होते-होते अदालत उठने का समय हो गया और बाकी मुकदमे अगले दिन के लिए स्थगित कर दिये गए ।

उसी शाम को मेरे दफ्तर मे विशेष अदालत मे चल रहे अन्य मामलो के दावेदारो की जैसे बाढ आ गई । हरकोई अपने मुकदमे के लिए मुझे तय करना चाहता था । हरकिसी मामले मे कमी करा पाना बिल्कुल असभव था और न मै एक साथ पचास मामलो का अध्ययन और उनपर विचार कर सकता था । मुझे इसका बहुत अफसोस था, लेकिन विवश होकर ही मुझे इकार करना पडा ।

फिर भी कुछ लोगो ने अनुरोध किया कि मैं उनके मुकदमो की पैरवी करू । मैने उनसे स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि अशदान मे और किसी विशेष कमी की आशा नही रखनी चाहिए और मैं उनके मामले केवल इस आधार पर ले रहा हू कि वे मेरी वकालत के जोर से जो आम कमी हो गई है, मात्र उसकी सराहना के रूप मे ये मुझे अपने मामलो के लिए नियुक्त कर रहे हैं । मामले का अत इस प्रकार हुआ कि लगभग एक दर्जन

मुकदमे मुझे अपने हाथ मे लेने पडे।

अगले दिन धडाधड़ मुकदमो के फैसले होने लगे। प्रत्येक मुकदमे मे महत्वपूर्ण पहलुओ के सबध मे कुछ तर्क सामने रखे जाते और विशेष अदालत तुरत फैसला सुना देती थी। उन बारह मुकदमो मे से दस या ग्यारह मे मैं कमी कराने मे सफल हुआ।

इन मुकदमो की सफलता ने मुझे मेरे वकील-साथियों और जनता मे इस रूप मे विशिष्टता प्रदान कर दी कि मैं एक ऐसा व्यक्ति हू, जो अपने मुकदमो का सही ढग से अध्ययन करता है, उनके बारे मे विचार करता है और अपने मुकदमो की पैरवी विवेक और नम्रता के साथ करता है, जिससे जज भी उसके पक्ष मे ही फैसला देता है।

: १८ :

भाइयों का पुनर्मिलाप

वकील को यह वात सदा ध्यान मे रखनी चाहिए कि वह भी डाक्टर या अध्यापक या अन्य ऐसे ही किसी नागरिक जैसा एक सामाजिक कार्य-कर्त्ता है। उसे किसी परिवार के सदस्यो और आमतौर पर उन लोगो के बीच, जो मित्र अथवा नातेदार आदि हो, न केवल अच्छे सवध स्थिर रखने के लिए, बल्कि उन्हे मजबूत वनाने के लिए ईमानदारी के साथ सेवाए प्रदान करनी चाहिए। इसलिए उसे अपने मुवक्किलो की न्याय-परायणता और नैतिकता पर भी निगाह रखनी चाहिए।

यही देखना काफी नही है कि उसके मुवक्किल का मामला कानूनी निगाह से दोष-रहित हे, बल्कि उसे इस वात पर भी ध्यान देना चाहिए कि उसका मुवक्किल जो कराना चाहता है, उससे समाज के सदस्यो के सुखकर सवध सुदृढ वनते है या उन्हे हानि पहुचती है। वकील के पास अक्सर ऐसे मामले आते है, जिनमे कानून, नैतिकता और समानता के बीच विरोध होता है और उसे अपने मुवक्किल को समाज के व्यापक हित के ख्याल से ही सलाह देनी चाहिए, चाहे ऐसा करना कभी-कभी मुवक्किल के भौतिक हित के भी खिलाफ ही क्यो न जाता हो।

मेरा यह अनुभव रहा कि यदि इस काम को ठीक ढग से किया जाय तो लोग इस दृष्टिकोण की प्रशसा करते है और त्याग करने के लिए भी

तैयार हो जाते है और समय पाकर ऐसे वकील के कामों की उन वकीलो की अपेक्षा ज्यादा प्रशसा होती है, जो अपने मुवक्किल के केवल भौतिक लाभो पर ध्यान देता है।

मेरे हाथ मे एक ऐसा मुकदमा आया, जिसमे एक व्यक्ति ने साझेदारी भग करने और सबधित हिसाब-किताब के लिए अपने छोटे भाई के खिलाफ मुकदमा दायर किया था। दोनो भाई अपने चाचा के कारोबार मे काम करते थे, जिसके कोई सतान नही थी। सारे कारोबार का प्रबन्ध बडा भाई करता था और छोटे भाई ने थोडा-बहुत काम सीखने के लिए उसके साथ काम करना शुरू कर दिया। कुछ सालो बाद बडे भाई ने अपना निजी कारोबार चालू किया और पूरी तरह से उसकी देख-भाल करने लगा। वह पहलेवाले कारोबार को समय देने मे असमर्थ था, इसलिए उसकी देख-भाल अब अकेले छोटे भाई को ही करनी पडती थी।

जिन दिनो बडा भाई कारोबार का प्रबन्ध करता था, छोटे भाई को वेतन रूप मे कुछ नही दिया जाता था, लेकिन उसे भोजन, वस्त्र तथा आकस्मिक खर्चों के लिए एक रकम दे दी जाती थी। यह तो स्पष्ट ही है कि दोनो साझेदारी के पट्टे या लाभो के किसी निश्चित हिस्से अथवा कामो के बटवारे के बिना ही साझेदारो की हैसियत से काम कर रहे थे। जब बडे भाई ने नया कारोबार शुरू किया और अपना सारा समय उसीको देने लगा, तो छोटे भाई का यह सोचना स्वाभाविक ही था कि बडा भाई इस कारोबार के लिए कोई भी यत्न नही करता, इसलिए उसने उसमे होनेवाले लाभ पर से भी अपना हक खतम कर दिया है।

उस कारोबार मे अधिक पूजी लगाने की भी आवश्यकता नही थी। वह सोडा वाटर, बर्फ और ऐसी ही अन्य खान-पान की वस्तुओ का कारोबार था। कई वर्षों तक छोटा भाई इस कारोबार को चलाता रहा। इस बीच बडे भाई ने उसके लाभ मे से किसी हिस्से की चूकि माग नही की थी, इसलिए सारा लाभ इसीके हिस्से जाता रहा। ऐसा करते समय उसे यह खयाल रहा कि बडे भाई ने नया कारोबार शुरू कर देने के कारण पुराना कारोबार

पूरी तरह उसीपर छोड दिया है। इधर बडे भाई ने भी अपने स्वतत्र कारोवार से इन वर्षो मे खूब नफा कमाया। यह ऐसी साझेदारी भग करने का मामला था, जिसमे करारनामे के तौर पर न तो कोई लिखा-पढी थी और न जवानी कोई करार हुआ था। केवल उनका आचरण ही इस साझेदारी का आधार था।

आचरण की साझेदारी का यह सिलसिला वारह या पन्द्रह वर्ष तक दोनो भाइयो मे चलता रहा। इसके वाद बडे भाई ने किसी कारणवश यह दावा किया कि वह अब भी साझेदार है, भले ही वह इस बीच सक्रिय न रहा हो और इसलिए उन सब दिनो मे कमाये नफे मे से हिस्सा लेने का हकदार है। न तो शुरू मे ही कोई लिखित दस्तावेज था और न बाद मे उसे भग करने के वारे मे कोई लिखा-पढी हुई। सारा मामला भाइयो की अपनी-अपनी समझ पर ही निर्भर करता था।

जाहिरा तौर पर बडे भाई के मन मे कोई बेईमानी नही थी। वह हमेशा अपने छोटे भाई की यथासभव सहायता करना चाहता था, लेकिन उसने साझेदारी के अपने हक को भी छोडने का कभी विचार नही किया था। वह अपने इन हको पर जोर भी नही देता था, लेकिन उसका खयाल हमेशा यही रहा कि उस कारोबार मे उसका हक मौजूद है, भले ही वह उसका उपयोग नही करता और इस तरह वह अब भी साझेदार है।

छोटा भाई भी अपने बडे भाई की तरह ही ईमानदारी से सोचता कि उसके बडे भाई के ऐसे आचरण का यही अर्थ है कि उसने पुराने कारोबार मे अपना साझेदारी का हक छोड दिया है, इसलिए पुराने कारोवार का एकमात्र वही मालिक है।

जब बडे भाई ने पुराने कारोवार मे अपनी चालू साझेदारी के आधार पर अपने छोटे भाई से लाभ का अपना हिस्सा मागा तो उसे बडा आश्चर्य हुआ और उसने अपना आश्चर्य भाई पर भी प्रकट कर दिया। बडा भाई इस बात पर जोर देता रहा कि वह अब भी साझेदार है और उसे भी अपने छोटे भाई के आचरण पर बडा आश्चर्य हुआ। मामला ज्यो-का-त्यो पडा

रहा, क्योकि वडे भाई को देने के लिए छोटे के पास रकम नही थी ।

कुछ समय वाद जब जमीन-जायदादो की कीमत एकाएक बढ गई तो छोटे भाई ने अपनी एक जायदाद वेच दी और उससे प्राप्त हुए ५०,००० रुपये का चेक अपने वडे भाई को यह कहकर दिया कि उसके पास केवल यही कुछ है, जिसे वह दे सकता है, और वडे भाई को, जैसाकि उसने दावा किया है, पिछले सात वर्षों की साझेदारी के मुनाफे का हिस्सा समझकर इसीसे सतुष्ट हो जाना चाहिए । उसने वडे भाई से यह भी प्रार्थना की कि वह अपने-आपको हिस्सेदार समझना छोड़ दे और छोटे भाई को इस सारे कारोबार का पूरा मालिक वना रहने दे, जैसा कि वह अपनेको समझता भी था ।

वडे भाई ने इसे अपना अपमान समझा, क्योकि छोटे भाई ने इस वात पर जोर दिया था कि कारोवार का वही अकेला मालिक है और उसने वडे भाई की साझेदारी के अधिकार से इकार किया था। इसलिए उसने चेक वापस करते हुए छोटे भाई से कहा कि वह दान के रूप मे एक पाई भी लेने के लिए तैयार नही । यदि छोटा भाई उसे हिस्सेदार मानेगा तो ही वह इस रकम को ले सकता है ।

फिर कुछ वर्षों तक मामला योही पड़ा रहा । इसके वाद वडे भाई ने हिस्सेदार होने के नाते साझेदारी भग करने और हिसाव के लिए मुकदमा दायर कर दिया । इसमे कोई शक नही कि कुछ स्वार्थी लोग उसके सीधेपन और छोटे भाई द्वारा हकों से इकारी के कारण उसके गुस्से का लाभ उठाकर उससे ऐसा करा रहे थे । विचारणीय प्रश्न यह था क्या साझेदारी अव भी चालू है, या उसके आचरण के कारण वह खत्म हो चुकी है, और क्या मुकदमा दायर करने की अवधि निकल चुकी है। जाहिर तौर पर इन मामलो मे से किसी एक के भी फैसले पर पहुचना मुश्किल था । कारोवार के हिसाव-किताव तथा दोनो पक्षो के आचरण से ही प्रत्येक की स्थिति प्रकट होती थी, लेकिन कारोवारी सबधो के वारे मे उनमे कोई साझा-समझौता नही था ।

छोटे भाई की ओर से मैंने बचाव मे यह तर्क रखे—१. साझेदारी को

भग करना, अथवा विकल्प मे वडे भाई के आचरण से साझेदारी के हक की समाप्ति, और २ मियाद। दोनो मे इतना ज्यादा कोई पत्र-व्यवहार भी नही हुआ था और दूसरे यह मामला करीव बीस वर्ष पुराना था। यह कहना कठिन था कि अदालत का इस मामले मे क्या रुख होगा और यदि यह मुकदमा अदालतो मे लडा ही गया तो इसके लिए सर्वोच्च न्यायालय प्रिवी कौसिल तक जाना पडेगा, जिसमे धन और समय दोनो की बर्बादी होगी।

दोनो भाई एक दूसरे को प्यार करते थे। मुकदमा दायर करने के समय उनकी उम्र काफी हो चुकी थी। ६० या ६० से ऊपर। उनकी माता जीवित थी, जिनकी उम्र लगभग ९० साल थी। दोनो को ही इस बात का अफसोस था कि वे अपने निजी मतभेद के मामले के फैसले के लिए अदालत मे गये है।

छोटे भाई ने, जो मेरा मुवक्किल था, मुझसे दो-तीन बार कहा, "मावलकरसाहब, कैसी बदकिस्मती है कि हम अदालत मे एक-दूसरे के खिलाफ खडे है। इससे हमारी बूढी मा को बडा दु ख होगा, लेकिन मै कर क्या सकता हू ! यदि मेरे पास रुपया होता तो बडे भाई जितना भी चाहते, मैं उन्हे दे देता। मैंने एक तीसरे आदमी के जरिये उन्हे यह कहला दिया है कि मै उन्हे वह सारी रकम दे दूगा, जितनी वे चाहते है, बशर्ते कि मै उसका भार उठा सकू। लेकिन वह सुनते ही नही। उनका कहना है कि मुझे ऐसा कुछ नही चाहिए, जो मेरे हिस्से का नही है, और जो रकम वह अपने हिस्से की वतलाते है, वह इतनी बडी है कि मैं उसे इस वक्त दे नही सकता। मेरा कारोबार इस समय वुरी हालत मे है और मै काफी कर्जा भी ले चुका हू। मेरी समझ मे ही नही आ रहा कि मै अपने भाई को खुश कैसे करू ? वह बडे दयालु और स्नेही है, लेकिन वह सहज ही उत्तेजित और गुस्सा हो जाते है। ऐसी हालत मे मैं क्या करू ?"

वेशक कोई सहज उपचार नही था। मुकदमा सुनवाई के लिए पेश हुआ। बडे की पैरवी के लिए एक वकील और उसका सहायक वम्बई से अहमदावाद आये थे। अदालत मे जाने से पहले वार-रूप मे हम सवकी दुआ-

सलाम हुई। आम बातचीत के बाद उन्होंने मुझसे पूछा, "मि० मावलकर, मेरी राय मे यह ऐसा मामला है, जो आपसी समझौते से ही तय हो जाना चाहिए। यह कहना मुश्किल है कि अदालत इस बारे मे क्या रुख अपनायगी, और यदि दोनो दलो को प्रिवी कौसिल तक मुकदमा लडना ही है तो दोनो बडे भारी खर्चे के नीचे आ जायगे। क्या आपका मुवक्किल किसी शर्त पर राजी होने को तैयार है।"

मैंने फौरन जवाब दिया, "हा, मेरा मुवक्किल इसके लिए बहुत ही उत्सुक है, क्योकि वह अपने बडे भाई के खिलाफ अदालत मे खडा नही होना चाहता। परेशानी का कारण तो बडा भाई है, जो इतनी बडी माग पेश कर रहा है कि मेरा मुवक्किल उसे पूरा कर सकने की स्थिति मे नही है। यदि आपका मुवक्किल अपनी माग को कुछ कम कर दे तो मैं अवश्य ही उसकी इच्छा को पूरा करने की कोशिश करूगा। आपके मुवक्किल का रुख तो यह जान पडता है कि यदि वह हिस्सा लेने का हकदार है, तो वह अपना पूरा हिस्सा लेगा, अन्यथा वह कुछ नही लेगा।" इसके बाद हमने इस मामले पर विचार करना शुरू कर दिया और फिर अदालत के कमरे मे चले गये।

जब मुकदमे की पेशी हुई तो जज ने, जो मुझे अच्छी तरह जानता था, मुझसे कहा, "मि० मावलकर, क्या समझौते की कोई आशा नही है ?"

मेरा उत्तर था—"श्रीमान्, मैं यह नही कह सकता कि कोई आशा ही नही है। यदि अदालत हमे समय दे और जबतक हम समझौते के बारे मे अपनी असफलता घोषित न कर दे तबतक मुकदमे की प्रतिदिन सुनवाई होती रहे तो हम कोशिश कर सकते हैं। मुद्दई के गवाहों के कटघरे मे खडे होने तथा उसके साथ जिरह शुरू हो जाने के बाद तो कुछ भी सभव नही है।"

इसके बाद मैंने यह भी कहा कि मुझे इस बात की खुशी है कि दूसरे पक्ष के सज्जन भी किसी समझौते पर पहुचने के लिए उतने ही उत्सुक है। इसपर जज ने मुकदमा उस दिन की शाम के लिए स्थगित कर दिया और

समझौते की वातचीत की प्रगति के वारे मे सूचनाएं [illegible] दी।

सब लोग मेरे मकान पर आ गये। वह अदालत के पास ही था। वहा हमने समझौते की वाते शुरू की। वडा भाई छोटे भाई के व्यवहार से इतना नाराज था कि उसने एक मेज पर वैठकर उसके साथ वात करने से साफ इकार कर दिया। उसने यह भी कहा कि वह बहुत ही कृतघ्न है और महज पैसे के लिए जान देनेवाला है। आखिर तय यह किया गया कि दोनों भाइयो को अलग-अलग कमरो मे वैठाया जाय। वम्वई के वकील और मैं इधर-से-उधर आते और जाते और समझौते के लिए वडे भाई को मनाने की कोशिश करते। यही क्रम एक-एक दिन करके छ दिन तक चलता रहा और हर शाम हम जज को यह इत्तिला देते रहे कि "हम अभी असफल नही हुए है।"

मुझे विश्वास है कि हम तीनो वकीलो ने दोनो भाइयो की तजवीजो को एक से दूसरे भाई तक लाने ले जाने मे मकान के एक से दूसरे छोर तक जाने-आने मे कई मीलो का चक्कर लगाया होगा। आखिरकार वडे भाई ने अपने वकील की सलाह मानली और समझौता तय किया। तय यह हुआ कि छोटा भाई अपनी शक्ति के अनुसार किश्तो मे रकम अदा करता रहेगा।

इसके वाद हमने समझौते की शर्तो का मसविदा तैयार किया। हमने उसमे इस वात का भी ध्यान रखा कि अदा की जानेवाली जो रकम तय हुई है, वह छोटे भाई की जायदाद तथा उसके कारोवार के साजो-सामान को वधक रखने से सुरक्षित रहेगी। साझेदारी भग करने के लिए दायर किये गए मुकदमे की डिग्री मे कई कानूनी अडचनो की वजह से ये शर्तें जोडना सभव नही था। इसलिए हमने एक दूसरा रास्ता निकाला। दोनो भाइयो ने वबई के वकील और मुझको पञ्च वनाया और हमने दोनो भाइयो की स्वीकृत शर्तों को ध्यान मे रखते हुए अपना-अपना फैसला दिया। यह पहले से ही तय था कि समझौते को अदालत मे पेश किया जाय, डिग्री हासिल की जाय और मुकदमा खारिज हो जाय और दोनो

पक्ष अपने-अपने खर्चे के जिम्मेदार होगे। इस प्रकार हमारे एक सप्ताह के परिश्रम का अच्छा ही फल मिला। दोनों भाइयो का पुन मिलाप हो गया और वहा खुशी का वातावरण छा गया।

जब यह परिणाम अदालत मे घोषित किया गया तो जज भी बहुत खुश हुए। और जब हमने उनके धैर्य और उनके द्वारा दी गई सुविधाओ के लिए धन्यवाद दिया तो उन्होने कहा, "सच ही यह अत्यधिक सुखद और असाधारण अवसर है, जब किसी पारिवारिक झगडे को निपटाने के लिए ऐसे यत्न किये गए हो। मै दोनो भाइयो तथा उनके वकीलों को इस शुभ परिणाम के उपलक्ष मे अपने निजी कमरे मे चाय-पान के लिए आमन्त्रित करता हू। दोनो भाई एक ही मेज पर बैठकर चाय पियेंगे, और इसके बाद आपस मे हाथ मिलाकर चले जायगे।"

सभीने जज के इस प्रस्ताव को तुरन्त स्वीकार कर लिया और दोनों भाइयो ने वर्षों की कटुता के बाद एक साथ एक मेज पर बैठकर चाय पी।

मैं इस समझौते के परिणाम के बारे में एक बात कहना चाहता हू। छोटा भाई मेरा मुवक्किल था। उसके दिल मे मेरे लिए स्नेह था। वह अब भी नव वर्ष की बधाइया भेजकर तथा विवाह आदि शुभ अवसरों पर जरूरत के समय सोडवाटर तथा बर्फ भेजकर अपने सबधो को स्थिर रखे हुए है।

बडा भाई भी मुझपर उतना ही मेहरबान था। जब मैं नगरपालिका का अध्यक्ष था तो मेरे कहने पर उसने नगरपालिका को जितनी आवश्यकता हुई, मुफ्त मे बर्फ दी। गर्मियो मे वह मेरे यहा भी बर्फ भेजता है और यदि मैं उसे उसके पैसे देने की कोशिश करता हू तो वह थोडा खिन्न होता है और इस बात की शका करता है कि शायद अब मेरा उसपर विश्वास नही रहा।

मुफ्त मे बर्फ देना कोई खास माने नही रखता, लेकिन उस वृद्ध व्यक्ति का मेरे प्रति जो स्नेह और सम्मान था, उसे देखकर मैं कभी-कभी विह्वल हो जाता हू।

मैं समझता हू कि यदि समझौता न होता तो मुवक्किल और वकील चाहे जो भी करते, उसका इतना लाभ न होता। मेरा विश्वास है कि यदि यह मुकदमा लडा जाता तो प्रेम और सद्भावना के वातावरण के स्थान पर उसका परिणाम कटुता और अलगाव की भावना ही होता।

: १९ :

यशस्वी कार्य

मै इस खास मुकदमे का जिक्र यह दिखाने के लिए कर रहा हू कि एक वकील के लिए उद्योग का क्या महत्व है, सार्वजनिक प्रतिष्ठा और मुवक्किल से स्नेहपूर्ण सम्मान पाने के लिए यह कितना प्रभावकारी है। यह सच है कि अत्यधिक जागरूक वकील काफी सफलता प्राप्त कर लेता है, लेकिन उद्योग और सूझ-बूझ के अभाव मे केवल जागरूकता ही बहुत आगे ले जानेवाली नही होती है।

अहमदाबाद के एक सम्मानित और धनी उद्योगपति की मृत्यु हो गई। उन्होने एक वसीयत की, जिसमे उन्होंने इकलौते बेटे को अपना उत्तराधिकारी बनाया और पत्नी को वसीयत की प्रबधिका तथा नाबालिग बेटे की सरक्षिका नियत किया। उन्होने यह भी हिदायत की कि उनकी पत्नी को उन दो मैंजिग एजेसियो मे बतौर हिस्सेदार ले लिया जाय, जो अहमदाबाद की दो मिलो का प्रबध करती थी। मैनेजिग एजेंसी पैतृक संपत्ति के रूप मे पुराना कारोबार था। यह ऐसी मामूली हिस्सेदारी नही थी, जिसमे दो या अधिक व्यक्ति एक समझौते के अनुसार किसी कारोबार को चलाने के लिए मिलकर काम करते है।

जबतक मा बच्चे की सरपरस्त रही, उसे मृत की वसीयत के अनुसार फर्मों मे हिस्सेदार माना जाता रहा। इसलिए दोनो कंपनियो से जो मुआवजा मिलता था, उसके आधे हिस्से की वह हकदार थी।

यहा मैं यह वता देना चाहता हू कि १९२४ के आस-पास किसी फर्म पर आय-कर अथवा अतिरिक्त कर लगाये जाने के विपय मे कानूनी स्थिति क्या थी। सक्षेप मे, अतिरिक्त कर की स्थिति यह थी कि किसी फर्म की रजिस्ट्री न होने पर यदि उसकी सालाना आमदनी ५०,००० रु० या उससे ज्यादा हो तो उसे कर लगाने के लिए एक स्वतत्र इकाई माना जाता था। उस अवस्था मे गैर-रजिस्ट्री फर्म की आमदनी मे से प्राप्त हिस्सेदार के भाग को कर लगाने के लिए उसकी निजी आमदनी मे नही जोडा जाता था।

लेकिन दूसरी ओर, गैर-रजिस्ट्री फर्म के हिस्सेदारो के लिए एक विकल्प यह था कि वह कानून की शर्तों के अनुसार हिस्सेदारो के निजी हिस्सो और अन्य विवरणो का उल्लेख करके आय-कर अधिकारियो के यहा हिस्सेदारी की रजिस्ट्री करा ले। लेकिन यदि फर्म रजिस्ट्री-शुदा हुई तो उसका परिणाम यह होता था कि आमदनी मे से हिस्सेदार के निजी भाग को उसकी दूसरी आमदनी के साथ जोड दिया जाता और उसकी कुल आमदनी पर टैक्स लगाया जाता था। उस दशा मे गैर रजिस्ट्री-शुदा फर्म किसी प्रकार के कर की देनदार नही होती थी।

इस खास मामले मे मा को मैनेजिंग एजेसी की फर्मों से उसके हिस्से के रूप मे जो मिलता था, सिवा इसके उसकी आमदनी का कोई ज़रिया नही था। दूसरी ओर मैनेजिंग एजेंसी की फर्मो की आमदनी के हिस्से के अलावा उसके नाबालिग वेटे की ठोस आय के और वहुत-से ज़रिये थे। यदि फर्मो की रजिस्ट्री होती तो उसका स्पष्ट परिणाम यह होता कि वह नाबालिग लडका कर के मामले मे इन दो कारणो से नुकसान मे रहता— १ वह दोनो मैनेजिग एजेंसी फर्मो के प्रत्येक ५०,००० रु० पर कर न लगनेवाली छूट खो वैठता, २ अगर गैर-रजिस्ट्री-शुदा फर्मो की उसकी आमदनी के हिस्सो पर अलग-अलग कर लगाया जाता तो कर लगाने की दरे निश्चित कम होती, लेकिन चूकि दूसरे जरियो से उसकी आमदनी वहुत ज्यादा थी, इसलिए फर्मो की रजिस्ट्री हो जाने के कारण उसकी कुल आमदनी पर वहुत ऊची दरो से कर लगाया जाना था।

मुझे इस बात का पता नही कि किन कारणो से उसकी सरपरस्त मा के वकीलो ने उसे यह सलाह दी कि दोनो गैर रजिस्ट्री-शुदा मैनेजिंग एजेसी फर्मो की आयकर-अधिकारियो के यहा रजिस्ट्री करा ली जाय। इस रजिस्ट्री से सरपरस्त मां की आमदनी के हिस्से पर लगनेवाले कर-भार मे छूट हो गई, लेकिन दूसरी ओर इसके कारण नाबालिग लड़के की आय के हिस्से पर कर का भार बहुत ज्यादा बढ गया। सही तौर पर इसका परिणाम यह हुआ कि मा को जहा दो आने का फायदा हुआ, वहा लडके को दस रुपये का नुक्सान उठाना पडा।

इसके बाद, कुछ कारणो से, जिनके विस्तार मे जाने की आवश्यकता नही, नाबालिग के कुछ मित्रो ने बदइतजामी के आधार पर सरपरस्त को हटाने के लिए अदालत मे दर्खास्त दी। इसपर एक समझौता हुआ, जिसके फलस्वरूप मा ने सरपरस्ती से इस्तीफा दे दिया और दो निकट के रिश्तेदारो को नाबालिग का साझा-सरपरस्त बनाया गया। मै चूकि नये सरपरस्तों की ओर से वकील था, इसलिए नाबालिग के हितो की रक्षा करना मेरा फर्ज था।

जब हमने मा से अपने हाथो मे प्रबन्ध लिया तो मैंने उस नाबालिग के कारोबार को कानूनी तौर पर व्यवस्थित करके उसकी उस संपत्ति को सुरक्षित रखने का लक्ष्य बनाया, जो अतिरिक्त कर के रूप मे उसके हाथो से निकली जा रही थी। मै यहा यह स्पष्ट कर देना चाहता हू कि मैं किसी करदाता को यह सलाह देना न तो तब अनैतिक या असामाजिक समझता था, और न ही आज समझता हू कि वह अपने कारोबार की इस ढग से व्यवस्था करे, जिससे उसे कम-से-कम कर देना पड़े, बशर्ते कि इस कमी को हासिल करने के लिए कानूनी और स्पष्ट तरीकों का इस्तेमाल किया जाय। कर लगाने के कानून सरकारी आय-संबधी नीति पर आधारित होते है। इनका समझौतो, चोरी, झूठी गवाही आदि की तरह नैतिक पहलू मे कोई सबध नही होता।

कई विद्वान जजो ने इस प्रश्न के बारे मे बहुत ही साफ राय जाहिर की

है। लार्ड एडवोकेट बनाम फ्लेमिंग (१८९७ ए सी १४५, पृ० १५२) के मुकदमे मे लार्ड हाल्सबरी ने अपनी राय प्रकट करते हुए कहा कि ऐसे कानूनो (एक्ट) का अर्थ लगाते समय हम कानून पर नियत्रण रखनेवाले किसी सिद्धात का आश्रय नही ले सकते, जो कर लगाने-सबधी देनदारी को लागू करते है। हमे यह देखने भर के लिए कानून पर अग्रसर होना पडता है कि जिस कर का दावा किया गया है, वह विधान-सभा द्वारा जारी किये कानून (एक्ट) के अनुसार है या नही। अटार्नी जनरल बनाम रिचमड और गार्डन (१९०८ २ के बी ७२९, पृ० ७४३) के मुकदमे मे लार्ड जज, फेयरवैल ने यह मत प्रकट किया, "मै ऐसे किसी कानून को नही जानता, जो किसी व्यक्ति को ऐसे किसी कर से बचने को रोकता हो, जो उसकी जायदाद पर नही लगाया गया। . कानून-विरोधी तरीको को छोडकर किसी भी व्यक्ति को इस बात का पूरा हक है कि वह अपनी जायदाद को किसी भी ढग से बेचकर कर के भुगतान से अपनेको बचाले, बशर्ते कि वह ऐसा कर सके। यह तर्क कि उसका मुद्दा कर से बचना है, मुझे बिल्कुल असबद्ध जान पडता है। इसका कारण यह है कि कोई भी आदमी ऐसे कर से बचने और उसकी उपेक्षा करने मे पूर्णतया न्याय-सगत है, जो वर्तमान मे उसकी किसी जायदाद पर नही लगा है, किंतु भविष्य मे लगाया जायगा।"

नाबालिग की ओर से कानूनी कार्य के दौरान मुझे उसकी आमदनी पर कर लगाने के विषय मे आयकर अधिकारियो के सामने पेश होना पडता था। मैने इस आशय का तर्क पेश किया कि दोनो मैनेजिंग एजेसी फर्मो पर गैर रजिस्ट्री-शुदा फर्मो की दृष्टि से जुदा-जुदा कर लगाया जाना चाहिए और इन फर्मो से नाबालिग की आमदनी के हिस्सो को उसकी दूसरी आमदनी मे शामिल नही करना चाहिए। जब मैने यह तर्क पेश किया, तब मै यह नही जानता था कि अभिभावक मा ने ठीक उसी साल फर्मो की रजिस्ट्री कराई थी, जिसमे उसने समझौता किया था और उसके अनुसार अभिभावक-पद से इस्तीफा दे चुकी थी। सच तो यह है कि मै आयकर अधि-

कर सकता, क्योंकि इन फर्मों की तो आयकर-विभाग मे उसी साल रजिस्ट्री हो चुकी है।

यह रजिस्ट्री साल-के-साल नये सिरे से करानी पडती है। नाबालिग लडके को बडी भारी आर्थिक हानि सहन करने पडेगी, इस विचार से मुझे बहुत दु ख हुआ। इससे भी ज्यादा दु ख इस बात का था कि फर्मों की रजिस्ट्री कराने मे उस समय अनुचित जल्दबाजी से काम लिया गया, जबकि अभिभावक मा समझौते की बातचीत चला रही थी। दर असल मेरी समझ मे नही आ रहा था कि अभिभावक को इन फर्मों की रजिस्ट्री करने की आखिरकार सलाह ही क्यो दी गई। इसका नतीजा यह हुआ कि मा को तो कोई खास फायदा नही हुआ और बेटे की बहुत बडी हानि हो गई। लेकिन आयकर-अधिकारी से यह जानकर कि फर्में दर असल रजिस्ट्री-शुदा है, मैंने यह सोचना शुरू किया कि आखिर रजिस्ट्री के मामले पर कैसे काबू पाया जाय, जिससे नाबालिग लडके को करो मे दो सालो से सबधित ७५ हजार रुपये तक की कमी का लाभ मिल जाय।

घर लौटकर मैने किसी ऐसी उपधारा की तलाश शुरू की, जिसके आधार पर १९२२ के इडियन इन्कम टैक्स एक्ट मे कोई कमी मिल जाय। मैंने शुरू से लेकर अखीर तक सारे एक्ट को एक दर्जन से भी ज्यादा बार पढा कि अभिभावक-पद छोडनेवाली मा द्वारा दोनो फर्मों की रजिस्ट्री कराने मे कोई कानूनी कमी मिल जाय। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि फर्मों की रजिस्ट्री के लिए एक नई धारा जारी करने के पीछे विधान-सभा के दिमाग मे क्या बात रही होगी। जहातक आयकर-अधिकारियो का सबध था, क्या यह सब उनके उस समय की बर्बादी को बचाने के लिए किया गया था, जो किसी फर्म के विभिन्न हिस्सेदारो को सौंपे गए हिस्सो के बारे मे खोज करने और निर्णय करने पर लगाया जाता था ? अथवा यह कुछ और बात थी ? मैंने 'गजट ऑव इडिया' के पन्ने पलटने शुरू किये, जिसमें मूल प्रस्तावित कानून प्रकाशित हुआ था। मैंने इससे सबधित सारा साहित्य पढा, जैसे आयकर समिति की रिपोर्ट (१९२०-२१), कार्य और कारण-

सबधी वक्तव्य, आर्थिक मामलो के सदस्य का भाषण, और साथ ही केन्द्रीय धारा-सभा मे हुई तब की बहसें, जबकि कानून पास किया गया था। लेकिन कोई कमी न मिलनी थी, और न मिली।

फिर भी, मेरी यह धारणा थी, चाहे वह अन्त प्रेरणा ही रही हो, कि रजिस्ट्री कानून की दृष्टि से सगत नही हो सकती। क्या मैं इस आधार पर इसे रद्द करा सकता हू कि अभिभावक मा ने अपने नाबालिग बेटे के हितो की रक्षा करने मे कोताही की है ? या मैं धोखादेही का कोई कानूनी आधार पेश कर सकता हू ? या क्या मैं स्पष्ट रूप से कह द् कि चूकि रजिस्ट्री कराना नाबालिग लडके के लिए लाभप्रद नही रहा, इसलिए वह गैरकानूनी है ? मैंने इन नुक्तो पर बार-बार और प्रत्येक पहलू से सोचा और एक हफ्ते तक इसी मामले पर विचार करता रहा। यह कहने मे कोई अत्युक्ति नही कि रजिस्ट्री को रद्द कराने के समर्थन मे किसी कानूनी तर्क की खोज के द्वारा उसे विफल बनाने का विचार मेरे ऊपर हावी हो गया था।

आठ-दस दिन तक लगातार उस विषय पर विचार करने के बाद अचानक मुझे उसका समाधान मिल गया। इडियन इन्कम टैक्स एक्ट की धारा २ की उपधारा १४ मे रजिस्टर्ड फर्म की व्याख्या इस प्रकार की गई थी[1]

"रजिस्ट्री-शुदा फर्म वह फर्म होती है, जिसका गठन साझेदारी की इस विधि के अनुसार किया जाता है, जिसमे हिस्सेदारो के निजी हिस्सो का उल्लेख किया जाता है, और जिसके निर्धारित विवरण निश्चित विधि से आयकर-अधिकारी के यहा रजिस्ट्री-शुदा होते है।"

इस सदर्भ मे 'गठन' शब्द पर ध्यान दीजिये। जबतक किसी फर्म का गठन साझेदारी के यत्र के अधीन नही होता तबतक उसे कानूनी रजिस्ट्री नही कह सकते। मैं यह बात अच्छी तरह जानता था कि नाबालिग लडके

---

[1] यह व्याख्या बाद में एक्ट का संशोधन करके बदल दी गई थी।

की-ये मैनेजिंग एजसी की फर्में पारिवारिक पैतृक सपत्ति थी और उनका गठन किसी साझेदारी के यत्र के आधीन नही हुआ था। मैने सोचा, लेकिन यह भी सभव है कि कोई ऐसा दस्तावेज हो, जिसमे अभिभावक मा को साझेदार बताया गया हो, और ऐसा नावालिग लडके के पिता की वसीयत के अनुसार ही किया गया हो। अगर यह ऐसा ही हो, तो भी औचित्य की दृष्टि से यह नही कहा जा सकता कि फर्म का गठन एक साझेदारी के यत्र के अधीन हुआ था। जो दस्तावेज किसी नये हिस्सेदार के शामिल होने पर फर्म की गठन की भिन्नता को प्रमाणित करता है, उसे स्वत फर्म की गठन करनेवाला दस्तावेज नही कहा जा सकता।

फिर भी मैं इस बात का पक्का यकीन कर लेना चाहता था कि मा को हिस्सेदार के रूप मे शामिल करते समय किसी दस्तावेज पर हस्ताक्षर किये गए थे या नही। मा और नाबालिक लड़के के नये अभिभावको के बीच अच्छे सबध न होने के कारण इसकी छानबीन मे अभिभावक मा से किसी प्रकार की सहायता की आशा नही की जा सकती थी। इसलिए मुझे इस सूचना के लिए एक दूसरे माध्यम का सहारा लेना था और वह था आयकर-विभाग।

उन दिनो आयकर के मामलो में मेरी वकालत बड़ी अच्छी चल रही थी। सच तो यह है कि अहमदावाद मे केवल मैं ही ऐसा वकील था, जो आय-कर अधिकारी और असिस्टैंट कमिश्नर के सामने पेश होता था। अहमदावाद मे नियुक्त मौजूदा असिस्टैंट कमिश्नर पहले वहा आय-कर अधिकारी रह चुके थे और मुझे भली प्रकार जानते थे। एक दिन मैं किसी दूसरे मामले में उनके पास गया। अकस्मात् मैंने पूछा, "मुझे पता चला है कि अमुक मैनेजिंग एजेंसी की फर्म आय-कर के लिए रजिस्टर्ड हो चुकी है। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि उस साझेदारी का, जिसकी रजिस्ट्री कराई गई थी, क्या कोई दस्तावेज आय-कर अधिकारियो के सामने पेश किया था ?" असिस्टैंट कमिश्नर ने उत्तर दिया, "हां, मुझे याद है कि साझेदारी के प्रमाण रूप मे बहुत बडी रकम के स्टाम्प पर भारी-भरकम लिखित दस्ता-

वेज मेरे सामने पेश किया गया था, और आय-कर-विभाग ने उसे रजिस्ट्री के आधार के रूप मे स्वीकार कर रखा है।"

उनके उत्तर से मुझे वडी राहत मिली, क्योकि इससे यह स्पष्ट हो गया कि ऐसा कोई दस्तावेज नही, जो अभिभावक मा को साझेदार के रूप मे पेश करता हो। असिस्टैंट कमिश्नर का यह सकेत कि वह दस्तावेज काफी पैसो के स्टाम्प पर लिखा था, मुझे यह सुराग देने के लिए काफी ''' कि मृतक की वसीयत के प्रमाण के आधार पर आयकर-विभाग ने फर्म की रजिस्ट्री को स्वीकार किया था और हिस्सेदारी के किसी दस्तावेज के आधार पर नही। तुरत मैने अभिभावको के सचिव को टेलीफोन किया कि वह मृतक की वसीयत के प्रमाणपत्र को लेकर मेरे पास आ जाय, और यह देखकर मुझे वहुत खुशी हुई कि दोनो फर्मो की रजिस्ट्री के वारे मे आयकर-विभाग ने साल-के-साल मजूरी देख रखी थी। मेरा मामला वन गया, कोई उसे बिगाड नही सकता था और मेरी खुशी का ठिकाना नही था।

मेरे मुकदमे का मूल आधार यह था कि फर्मो की गठन का कोई भी दस्तावेज नही था और वसीयत का प्रमाण-पत्र साझेदारी का दस्तावेज नही होता। अलावा इसके मैने यह तर्क पेश किया कि वसीयत मे रखी गई यह शर्त कि अभिभावक मा को हिस्सेदार के रूप मे शामिल किया जाय, वसीयत या मृतक के इच्छा-पत्र को हिस्सेदारी का दस्तावेज नही बना सकती। वसीयत पर अमल करनेवालो को आदेश से अधिक उसका कुछ भी महत्व नही था और जिस दस्तावेज मे ऐसा आदेश हो, उसे साझेदारी का दस्तावेज नही माना जा सकता। जिस दिन यह लिखा गया, उसी दिन से यह लागू नही हुआ और वसीयत करनेवाला व्यक्ति इन आदेशो को कभी भी वदल सकता था। इसलिए आयकर-विभाग वसीयत के प्रमाण-पत्र को ही हिस्सेदारी का दस्तावेज मानकर फर्मो की रजिस्ट्री करने मे गलती पर था। इस प्रकार जव रजिस्ट्री करने का कोई आधार ही नही था, तो जो रजिस्ट्री क्रियान्वित हुई थी, वह कानून-विरुद्ध थी। इससे भी अधिक मैंने यह कहा कि मैं पिछले दो वर्षो मे दिये कर (लगभग ७५०,०० रुपया) वापस लेने

की हकदार हू।

जब मैने अपने तर्क लिखित रूप मे आयकर-अधिकारी को दिये तो उसे धक्का-सा लगा, किंतु मैने उसे आश्चर्य का धक्का-मात्र ही समझा। उसने मेरा सारा बयान पढ लेने के बाद कहा, "मि० मावलकर, आपके तर्क सही जान पडते है। लेकिन क्या हम इतने मूर्ख थे कि हम इसे साझेदारी के दस्तावेज के रूप मे स्वीकार करते ?"

इसपर मैंने कहा, "हर्गिज नही, मै आप अथवा आयकर-विभाग के अन्य किसी भी अधिकारी के लिए ऐसे किसी विशेषण का प्रयोग नहीं करूगा। यह केवल आपपर ही निर्भर करता है कि आप अपने पहले के आदेशो की विवेकशीलता या उनके सही होने का मूल्याकन करे। मैं तो केवल यही दिखा सकता हू कि रजिस्ट्री सर्वथा कानून-विरुद्ध है, इसलिए मै रकम वापस लेने का हकदार हू।"

चूकि इस मामले मे बहुत बडी रकम का सवाल था, इसलिए आयकर-अधिकारियो ने उसे सरकार के कानूनी अधिकारियो को सौप दिया, और मुझे यह कहते हुए खुशी हो रही है कि मैंने आयकर-अधिकारियो के सामने जो दृष्टिकोण रखा था, उससे वे पूर्णतया सहमत थे। इस सबका नतीजा यह हुआ कि मैने रकम की वापसी के लिए जो प्रार्थना की थी, वह स्वीकृत हो गई। मेरी माग यह थी कि पिछले दो वर्षों का कर वापस किया जाय, लेकिन इसके बजाय मुझे केवल एक वर्ष की ही वापसी मिली, दूसरे वर्ष की रकम को मियाद-बाहर की ठहराया गया। जो हो, मैंने अपने मुवक्किल को लगभग चालीस हजार रुपये की वापसी दिलाई, जो १९२५ के साल मे बहुत बडी रकम कही जा सकती है। जहातक मेरे मुवक्किल का प्रश्न है, वह खुश था कि उसे उसकी वाजिब रकम मिल गई, और उसी तरह मै भी प्रसन्न था कि मेरा श्रम सफल हुआ।

२०

उपसंहार

सन् १९१३ से १९३७ तक के वकालती जीवन मे जिन वहुत-से मुक-दमो के लिए मुझे काम करना पडा, उनमे से कुछ विशेप के बारे मे मैंने पिछले अध्यायो मे जिक्र किया है। इस बीच मैने तीन स्मरणीय अवसरो पर वकालत स्थगित की। पहला मौका १९२१-२२ था, जव असहयोग-आदोलन के दौरान मे काग्रेस ने अदालतो के बहिष्कार की घोषणा की थी। दूसरा मौका १९२७ मे हुआ, जव गुजरात मे भयकर वर्पा के कारण वाढ-पीडितो की सहायता के लिए मैंने लगभग चार मास तक पूरी शक्ति के साथ सहायता-कार्य किया। तीसरा मौका लगभग सोलह मास का था, जब मैं मार्च १९३३ से जून १९३४ तक एमर्जेंसी पावर्स एक्ट के अधीन रत्नगिरि मे नजरबद रहा।

सन् १९३० मे जव मै अहमदावाद नगरपालिका का अध्यक्ष चुना गया तो मैने अपना पूरा समय नगरपालिका के कार्यो मे लगाने के लिए वकालती पेशा लगभग छोड ही-सा दिया था, लेकिन इसके माने यह भी नही कि मै अपने पेशे से पूरी तरह वेफिक्र हो गया था। फिर भी, मेरा वकालती जीवन लगभग वीस वर्ष तक चला। १९१३ मे जव मैं वकील वना तो मैंने ठीक इतने ही वर्षो तक वकालत करने की धारणा भी वनाई थी। मै उस दैवी दया का कृतज्ञ हू, जिसने मुझे अपने वकालती जीवन मे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सही रास्ते को पहचानने और उसपर चलने मे सहायता दी। मैं उस दैवी शक्ति का भी आभारी हू, जिसने मुझे वीस

वर्षों के बाद अपने वकालती जीवन को छोडने के निश्चय पर अटल रहने की शक्ति प्रदान की।

यदि मैं इस स्तर पर अपने निजी दृष्टिकोण से अपनी वकालत की नैतिकता का चित्रण करने की चेष्टा करू, तो मुझे आशा है, मेरे पाठक मुझपर अहकार और यश की लालसा का दोष नही लगायगे। ये अध्याय बीते वर्षो की पुरानी घटनाओ तथा सुखद स्मृतियो को फिर से ताजा करने के लिए ही समय-समय पर लिखे गए थे। अपने ही अदर झाककर देखने के मेरे ये प्रयास है। ईश्वर ने मुझे स्वस्थ शरीर और सेवा के लिए तत्पर मन का उपहार प्रदान किया है, जिसका मुझे गर्व है। अपने निजी सतोष के के लिए मैंने यह देखने की कोशिश की है कि मैंने ईश्वर-प्रदत्त इन गुणो का कैसा उपयोग किया है। यह सच है कि न तो मुझे और न ही ससार के किसी अन्य प्राणी को यह वरदान प्राप्त है कि वह अपने भूतकाल को फिर से इसी हाड-मास के शरीर मे जीवित कर सके।

मै अपनी कमियो के प्रति भी पूरी तरह सजग हू। वह मेरे जीवन की तराजू की कमियोवाला पलडा है, और सचमुच ही कमियोवाला पलडा खूबियोवाले पलडे से कही भारी है। जैसा कि मै पहले ही दिखा चुका हू कि अपने वकालती जीवन के शुरू के दिनो मे मैं आदर्श मार्ग को अपनाने मे काफी मजबूत नही था। मेरा हमेशा से यह विचार रहा है कि वकील को एक समाज-सेवी की भाति वकालत करनी चाहिए। उसे सारे समाज की प्रगति को आगे बढाने और उसे सुव्यवस्थित करने मे सहायता देनी चाहिए। यद्यपि मै यह दावा कर सकता हू कि मैं प्रत्यक्ष रूप से झूठ बोलने या उसका समर्थन करने का दोषी नही रहा तथापि मैं परोक्ष रूप से उसकी सहायता करने के दोष से अपने-आपको नही बचा सकता। इसके अनेक कारण थे, जैसे, तर्क और सावधानी के बारे मे गलत खयाल या वकील के रूप मे न्याय-सगत कर्तव्यो की अजानता। यदि मुझे सफाई पेश करने का मौका दिया जाय तो मै कहूगा कि मेरी गलती यह थी कि मैं अपने से बडो को अप्रसन्न नही करना चाहता था और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी का भी मुझे उचित ज्ञान नही था। फिर भी मै यह दावा कर सकता हू कि किसी भी व्यक्ति को हानि पहुचाने या दुःख देने के विचार को

मैने पनपने नही दिया। दूसरे की परेशानियो से अनुचित लाभ उठाने की नीयत मेरी कभी नही रही और न खोटे उपायो से रुपया कमाने का आग्रह कभी मुझपर हावी हुआ। दरअसल रुपया कमाना और उससे अमीर आदमी बनने का मेरा ध्येय कभी नही रहा। मेरी 'महत्वाकाक्षा', यदि इसे महत्वाकाक्षा कह सकते हे तो सदा यही रही कि मै अपनी सारी शक्ति लगाकर समाज की सेवा करू और मुझे विश्वास है कि यद्यपि मैं अपनी वकालत के लिए फीस लेता था, (जो अहमदाबाद मे शायद सबसे ज्यादा थी) तथापि अपने मुवक्किलो के खर्चे को उचित सिद्ध करने के लिए उसीके अनुरूप सेवाए भी प्रदान करता था। मेरी फीस किये हुए काम के परिमाण के अनुसार होती थी। इसका आधार यह कभी नही रहा कि हर मुकदमे मे मुझे कितने दिन लगाने पडे। मैंने बिना फीस लिये ऐसे मुकदमो की भी पैरवी की, जिनका असर सारे समाज पर पडता था। इसके अलावा ऐसे व्यक्तिगत मुकदमो का भी मुफ्त मे काम किया, जिनमे किसी गरीब के साथ अन्याय हुआ और वह अपना अधिकार सिद्ध करने के अयोग्य था। मेरे वकालती जीवन को मेरे वकील मित्रो ने चाहे जैसे भी आका हो या आक रहे हो, मैं मोटे तौर पर यह कह सकता हू कि मुझे तो इस बात का पूरा-पूरा सतोष है कि मैंने अपना काम बहुत अच्छी तरह निभाया है। हो सकता है कि मै इससे भी कुछ अच्छा कर पाता, यदि वकालती जीवन की शुरुआत मे ही मुझमे यह साहस और विवेक होता, जो आज चालीस साल के सार्वजनिक जीवन के लबे अर्से के बाद मैं पा गया हू। इस बारे मे भिन्न मत हो सकते है और जो कुछ मैने कहा है, कुछ लोगो को उसमे मिथ्या-भिमान भी जान पड सकता है, लेकिन वह मात्र कल्पना का मामला है। सबके समान ही मै भी लगातार मेहनत और परिवर्तन के दौर मे रहा हू।

इस मार्ग को अपनाने के जो नतीजे मुझे हासिल हुए, उन्हे सक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है

१ अपने सभी मुवक्किलो से मुझे प्यार व सम्मान मिला। उनके साथ मेरा सबध वकील और मुवक्किल के इकरारी सबध तक ही सीमित नही था, बल्कि वह व्यक्तिगत सबधो तक विकसित हो गया था। मैं समझता हू कि मेरे मुवक्किलो मे प्राय सभी मेरे मित्र बन गये थे, सिवा उन दो के,

जिनकी जिन्दगी के तरीके मेरी मान्यता के बिल्कुल विपरीत थे।

२ मेरे मुवक्किलो का मेरे प्रति जो प्रेम और आदर था, उसके कारण उनपर मेरा ऐसा प्रभाव था, जो केवल कानूनी सलाह देने से हासिल नही हो सकता। यह प्रभाव ऐसा था, जो सार्वजनिक जीवन मे मेरी बड़ी भारी सपत्ति बना, और बदले मे जिसके कारण जनता के और बडे क्षेत्र पर मेरा अधिक प्रभाव हुआ। अतत, इसीके फलस्वरूप अनेक ऐसे कामो को अपने हाथ मे ले सका, जिनसे सारे समाज का हित हुआ।

३ मुझे जजो से उनकी किसी भी तरह की झूठी चापलूसी किये बिना ही आदर और सम्मान मिला।

४ यद्यपि न्याय और निष्पक्षता के विचारो के कारण मैंने जिन मुकदमो की पैरवी की, उनकी सख्या सीमित थी, तथापि आर्थिक दृष्टि से मे नुकसान मे नही रहा। मेरी फीस इतनी ज्यादा होती थी, जो न केवल मेरे उन मुकदमो की कमी को पूरा कर देती थी, जो कि मैं नही लेता था, बल्कि उन मुकदमो की भी क्षति-पूर्ति कर देती थी, जो मै बिना फीस लिया करता था, और जिनकी सख्या काफी बडी होती थी।

५ मेरी वकालत ने मुझे बहुत-से सार्वजनिक धर्मार्थ ट्रस्टो की सेवा करने का भी सुअवसर दिया। मुझे महात्मा गाधी के साबरमती-आश्रम, नवजीवन ट्रस्ट, अखिल भारतीय चर्खा सघ, गुजरात विद्या सभा और बहुत-सी अन्य सस्थाओ का कानूनी सलाहकार होने का भी गौरव प्राप्त था। इन सस्थाओ का कानूनी सलाहकार होने के नाते राष्ट्रीय जीवन के साथ मेरा निकट सम्पर्क हुआ, और इस प्रकार मैं इडियन नेशनल काग्रेस के माध्यम से देश की सेवा करने के योग्य हुआ।

मेरा विश्वास है कि मैंने सामाजिक दृष्टि से अपने वकालती जीवन में अच्छी सफलता प्राप्त की, यद्यपि मै यह नही कह सकता कि मैं पूरी तरह अथवा आदर्श रूप मे सफल रहा। जो भी सफलता मुझे प्राप्त हुई, वह मेरे कानून के ज्ञान या मेरी योग्यता के कारण नही, बल्कि मुख्य रूप से मेरे नैतिक दृष्टिकोण से इसमे अधिक बल मिला, क्योकि मैंने समाज के विभिन्न वर्गों के बीच सुखद सबध स्थिर रखने की चेष्टा की।

अब मैं आचरण-संबंधी कुछ ऐसी नीतियो या नियमो का उल्लेख करना

चाहता हू, जो वकालती जीवन शुरू करनेवालो को अपनाने चाहिए। मै अपने प्रत्येक युवक वकील-मित्र को सलाह दूगा कि वह इन्हे ध्यान मे रखे, क्योकि यह वर्षो के अनुभव के नतीजे हैं

१ आपने काम के जिस पहले अनुमान के आधार पर फीस तय की थी, किंतु बाद मे यदि आपको अपेक्षाकृत ज्यादा काम करना पडे तो और ज्यादा फीस की माग नही करनी चाहिए।

२ यदि आप अपने मुवक्किल का मुकदमा जीत जाय, तो उससे किसी प्रकार के इनाम या भेंट की माग न करे। आप मुकदमा हार जाते है या जीत जाते हैं, इसका असर आपको दी जानेवाली फीस पर नही होगा। आपका यह कर्तव्य है कि आप अपने मुवक्किल के लिए शक्ति-भर कार्य करे और यदि आपने पूरी शक्ति के साथ काम किया है और आपने मुकदमा जीत लिया है, तो इससे आप भेंट या इनाम के हकदार नही हो जाते। आपने अपना कर्तव्य ही तो पूरा किया।

३ ऐसा मुकदमा नही लेना चाहिए, जो नैतिक दृष्टि से गलत या बे-बुनियाद हो। लेकिन आप कानूनी दृष्टि से कमजोर मुकदमा ले सकते है बशर्ते कि आपको अपने मुवक्किल की बात के नैतिक और समानता-विषयक पहलुओ का पूरा-पूरा भरोसा हो।

४ अपने मुवक्किल के विरोधी के साथ आपको तबतक कोई भी धधा या सबध स्थापित नही करना चाहिए, जबतक मुकदमे का आखिरी तौर पर फैसला नही हो जाता। बहुत-से विरोधी वकील को अपने पक्ष मे करने के लिए बतौर रिश्वत उसे अपनी ओर से तैनात कर लेते हैं। एक बार यदि आपने ऐसा धधा या सबध बना लिया, तो विरोधी आपपर हावी हो जायगा और आपका अपना मुवक्किल आपकी ईमानदारी पर शक करने लगेगा। नि सदेह, जब आप वरिष्ट हो जायगे और आपकी साख भी जम गई होगी, तबकी बात दूसरी है।

५. इन बातो से जज को धोखा मत दीजिये (क) गलत तरीके से रिकार्ड का उद्धरण, (ख) गलत या रद्द किये गए मुकदमो के उदाहरण देना, (ग) अपनी निजी सुविधा या बीमारी के झूठे बहाने मे मुवक्किलो की सुविधा के लिए तारीखें लेना।

आपको अपने मुकदमे के लिए नियत दिन पर हाजिर होना चाहिए, भले ही आपको यह बता दिया गया हो कि कुछ दिनो तक पेशी सभव नही है। इससे दोहरा लाभ होगा। आपको इस बात का ज्ञान हो जाता है कि मुकदमो की पैरवी किस ढंग से की जाती है, और आपकी हाजिरी आपके निजी दृष्टिकोण से एक प्रकार की ऐसी पूजी बन जाती है, जिसका जज पर यह प्रभाव पडता है कि आप सदा हाजिर रहते हैं, बशर्ते कि अन्यत्र व्यस्त न हो। इस प्रभाव का नतीजा यह होगा कि आप अपने अन्य काम भी कर सकेंगे और आपको यह खटका नही रहेगा कि जज आपकी गैरहाजिरी मे भी आपका मुकदमा ले सकता है।

७ अन्य वकीलो के ऐसे मुकदमे, जिनमे वे बेहद लाचारी से अथवा दुर्भाग्यवश मृत्यु हो जाने के कारण अदालत मे पेश नही हो सकते, आपके पास आते है तो इस बात को गाठ बाध लीजिये कि उनसे कोई फीस नही लेनी है। मेरा यह विश्वास है कि किसी प्रकार के मुआवजे की आशा किये बिना ही आपको अपने वकील-मित्रो के मुकदमे लेने चाहिए, क्योंकि आप भी वकीली भाई-चारे के सदस्य है। कभी-कभी वकील लोग अपने मुवक्किल पर इस तर्क के आधार पर फीस देने के लिए दबाव डालते है कि वह वकील से नही, बल्कि मुवक्किल से अपनी फीस वसूल कर रहे है। लेकिन ध्यान देने योग्य बात यह है कि मुवक्किल को इस तरह कुछ अधिक देना पड़ेगा, जिसकी मांग वकील-भाई की इकरारी जिम्मेदारियो को नजर मे रखते हुए उससे नही की जानी चाहिए।

८ कृपया यह याद रखिये कि भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दृष्टियो से चरित्र आपकी सबसे बडी सपत्ति है। आपका चरित्र ही आपको इस योग्य बनानेवाला है कि आप सचाई, ईमानदारी और इज्जत से अपनी जीविका कमा सके, जिसका परिणाम आम समाज के लिए भी हितकर होगा।